CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

10-3

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

भारत के महान् योगी

द्वितीय खण्ड

विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

BHARAT KE MAHAN YOGI

Part II

by

Vishwanath Mukherjee

1986

V.V.P PRICE 25/-

© विश्वनाथ मुखर्जी

प्रथम संस्करण : १९८६

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन
पो० बाक्स ११४९
चौक, वाराणसी—१

मुद्रक
विद्या प्रिंटिंग प्रेस
के० २०/१८० ब्रह्माघाट,
वाराणसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वश्री नथमल केडिया

और

नन्दलाल टाँटिया

को

सादर-सप्रेम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी बात

सन् १९७८-७९ की घटना है। आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदीजी से मिलने के लिए उनके निवास पर गया था। वहाँ एक अपरिचित सज्जन पहले से मौजूद थे। संभवतः पहले से ही दैवी-चमत्कार के बारे में चर्चा चल रही थी। अचानक उन अपरिचित सज्जन ने एक अद्भुत संस्मरण सुनाया।

उन्होंने कहा--"आज से २५-३० वर्ष पूर्व मैं घर से भागकर बम्बई नौकरी की तलाश में गया था। बम्बई भले ही व्यापारिक नगरी हो, पर वहाँ इन्सानियत नहीं है। नौकरी की बात कौन कहे, ठहरने की जगह भी कहीं न मिली। लगातार कुछ दिनों तक ठोकर खाने के बाद सोचा--इससे अच्छा है, घर वापस चला जाऊँ। कम से कम वहाँ भोजन आश्रय के लिए परेशान तो नहीं होना पड़ेगा।

स्टेशन पर अपार भीड़ थी। भीड़ में बिना टिकट सवार हो गया। बातचीत के सिलसिले में ज्ञात हुआ कि यह भीड़ पूना जा रही है। आज वहाँ 'आलन्दी' में संत ज्ञानेश्वर की समाधि पर मेला लगेगा। सोचा--चलो, यहाँ का मेला देख लूँ। अगर पूना में कहीं किस्मत ने साथ दिया तो वहीं काम करूँगा।

पूना से १५ मील दूर इन्द्रायणी नदी के किनारे आलन्दी नामक गाँव है। यहाँ संत ज्ञानेश्वर की समाधि है। मंदिर के बाहर अपार भीड़ थी। मैं भीड़ घटने की प्रतीक्षा में एक जगह बैठ गया। दर्शनार्थियों से बातचीत करने पर ज्ञात हुआ कि आज लोग संत ज्ञानेश्वर की समाधि पर जो मन्नत मानते हैं, वह पूरी हो जाती है। यहाँ आनेवाले भक्त अपनी कामना लेकर आते हैं। जिनकी कामना पूरी हो जाती है, वे बार-बार अपनी श्रद्धा प्रकट करने आते हैं।

मुझे इन बातों पर तनिक भी विश्वास नहीं हुआ। यहाँ तक कि एक यात्री ने यह भी कहा कि उसकी कामना पूरी हो गयी है अतएव अब वह केवल दर्शन करने आता है। मैंने सोचा, देखूँ मेरी कामना कैसे पूरी होती है। मैं असंभव माँग पेश करूँगा। मैं यह नहीं जानता कि उस समय मेरे मन में कैसे यह भावना उत्पन्न हो गयी। मैंने कहा--"हे ज्ञानेश्वर महाराज, जिस नगरी ने मुझे आश्रय नहीं दिया, नौकरी नहीं दी। मैं चाहता हूँ कि उसी नगरी में मेरा अपना निजी भवन हो।"

"संत ज्ञानेश्वर महाराज की कृपा से तीन साल के भीतर बम्बई में मेरा निजी मकान बन गया। आज-कल वहाँ मेरे लड़के रहते हैं। मैं अक्सर समाधिस्थल पर जाकर अपनी श्रद्धा प्रकट कर आता हूँ।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस कहानी को सुनकर मैं चकित रह गया। आज भी हमारे बीच ऐसे अनेक योगी हैं जो अपने को छिपाये रखते हैं जैसे महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज। वे कभी-कभी अपनी योग विभूति प्रकट करते रहे। उपर्युक्त घटना का उल्लेख इसलिए करना पड़ा कि प्रथम खण्ड की पांडुलिपि पढ़कर कुछ लोगों ने संतों की योग विभूतियों पर विश्वास नहीं किया।

प्रस्तुत खण्ड में जितने संतों के विवरण हैं, वे सभी अलग-अलग प्रवृत्ति के हैं। एक ओर विशुद्धानन्दजी तो अपने युग के महान् संत हुए, पर दूसरी ओर उनके सतीर्थ हरिपद की सारी तपस्या खंडित हो गयी। साधना का मार्ग कितना कठिन है, इसका उल्लेख भिन्न-भिन्न संतों के जीवन-दर्शन में दिखाई देता है। मुझे विश्वास है कि इस खण्ड को पढ़ने के पश्चात् लोगों के मन में संतों के प्रति आस्था उत्पन्न होगी।

मैं उन लेखकों तथा भक्तों का आभारी हूँ जिनकी रचनाओं तथा मौखिक घटनाओं से सहायता ली है। डाक्टर बदरीनाथ कपूर ने कृपा पूर्वक पांडुलिपि का संशोधन किया है और उन्हें इसके अध्ययन से शांति प्राप्त हुई है, यही मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार है।

सिद्धगिरि बाग
वाराणसी–१०

—विश्वनाथ मुखर्जी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुक्रमणिका

१. संत ज्ञानेश्वर	....	१
२. संत नामदेव	....	१८
३. संत रविदास	....	३३
४. स्वामी विवेकानन्द	....	४५
५. स्वामी ब्रह्मानन्द	....	७०
६. स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस	....	९३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तृतीय खण्ड में—

- योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी
- परमहंस रामकृष्ण देव
- योगी भूपेन्द्र सान्याल
- संत कीनाराम
- नारायण स्वामी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संत ज्ञानेश्वर

पूना शहर से १५ मील दूर इन्द्रायणी नदी के किनारे आलन्दी नामक गाँव है जहाँ सिद्धेश्वर मंदिर है जिसमें नित्य श्रद्धालु भक्त नदी में स्नान करने के पश्चात् दर्शन के लिए आते हैं।

श्रीमती रुक्मिणी बाई नित्य की तरह अपने पड़ोस में रहनेवाली सहेली सुनन्दा नायक के साथ दर्शन करने आयी थी। परिक्रमा समाप्त करने के बाद उसकी नजर एक ओर बैठे एक सौम्य संत पर पड़ी जो ध्यान लगाये एक टक मंदिर की ओर देख रहे थे।

एक अनजाने आकर्षण से रुक्मिणी बाई ने संत के समीप आकर जमीन से माथा टेककर प्रणाम किया। संत ने प्रसन्न मुद्रा में कहा––"सौभाग्यवती हो बेटी। दूधो नहाओ, पूतों फलो।"

सहसा रुक्मिणी बाई की आकृति पर विषाद की रेखाएँ प्रस्फुटित हो गयीं। सुनन्दा ने प्रणाम करते हुए कहा––"ऐसा आशीर्वाद किस काम का जो फलदायक न हो।"

संत ने विस्मय से पूछा––"क्यों बेटी, मेरा आशीर्वाद फलदायक क्यों नहीं होगा ?"

सुनन्दा ने तेज स्वर में कहा––जो नारी सुहागिन होती हुई विधवा सा जीवन व्यतीत कर रही हो, वह भला दूधो नहाओ, पूतों फलो जैसा आशीर्वाद लेकर क्या करेगी। आप अपना आशीर्वाद लौटा लीजिए।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अब संत तनकर बैठ गये। कुछ क्षण तक गौर से रुक्मिणी बाई की ओर देखने के बाद उन्होंने पूछा—"आखिर बात क्या है? मैं प्रत्यक्ष रूप से देख रहा हूँ कि यह देवी कई सुसंतानों की जननी होगी।"

सुनन्दा ने कहा—"ऐसा कैसे हो सकता है महाराज? इनके पति लगभग ११-१२ वर्ष हुए तीर्थयात्रा करने काशी गये थे। बाद में पता चला कि वहीं श्रीपादस्वामी संत[1] से दीक्षा लेकर संन्यास ग्रहण कर लिया है। संन्यासी व्यक्ति कैसे पुनः गृहस्थ बन सकते हैं?"

सहसा संन्यासी महाशय की आकृति कठोर हो गयी। प्रश्नसूचक दृष्टि से देखते हुए उन्होंने पूछा—"उसके नाम और रंग-रूप के बारे में कुछ बता सकती हो? मैं यहाँ से काशी जाऊँगा। अगर वह काशी में कहीं होगा तो उसे यहाँ भेज दूँगा, क्योंकि युवा पत्नी से छल करके संन्यास लेना अपराध है। इससे संन्यास-धर्म नष्ट हो जाता है। साधना निष्फल हो जाती है।"

सुनन्दा ने उत्तर दिया—"रुक्मिणी बाई के पति का नाम विट्ठल पंत है। दुबले-पतले, गोरा रंग है। दाहिने हाथ में एक बार फोड़ा हुआ था, उसका निशान है। बात करते समय नजर नीचे रखते हैं।"

संत ने कहा—"तुम चिंता मत करो बेटी। काशी जाकर मैं स्वयं तुम्हारे पति की खोज करूँगा। उसे तुम्हारे पास अवश्य भेजूंगा। मेरा आशीर्वाद कभी निष्फल

---

१. हिन्दी, मराठी, गुजराती और बंगला भाषा की अधिकांश पुस्तकों में विट्ठल पंत के गुरु का नाम श्री रामानन्द स्वामी लिखा गया है। यहाँ तक कि स्वयं रामानन्द संप्रदाय के लोग भी यही मानते हैं। लगता है कि किसी लेखक ने भ्रमवश रामानन्द स्वामी का उल्लेख कर दिया होगा, जिसकी नकल सभी करते चले गये।

अधिकांश विद्वानों ने रामानन्द स्वामी का जन्म १२९९ ई० माना है। उनके शिष्य विट्ठल पंत की मृत्यु १२८३ ई० में हो गयी। विट्ठल पंत के पुत्र संत ज्ञानेश्वर ने २५ अक्टूबर, सन् १२९६ ई० के दिन समाधि ली। ऐसी हालत में विट्ठल पंत के गुरु रामानन्द स्वामी कैसे हुए?

श्री पुरुषोत्तम यशवंत देशपाण्डे ने 'ज्ञानदेव' नामक जीवनी में विट्ठल पंत के गुरु का नाम श्रीपादस्वामी लिखा है जो विश्वसनीय है।

श्री कृ० गो० वानखड़े गुरुजी ने भी अपनी पुस्तक 'नामदेव' में विट्ठल के गुरु का नाम श्रीपादस्वामी लिखा है, परन्तु आगे पृष्ठ ३३ पर वे लिखते हैं—काशी में स्वामी रामानन्द ने भी इन संतों का सत्कार किया। यह अपने आप में गलत है क्योंकि नामदेवजी के साथ यात्रा में निवृत्तिनाथ और ज्ञानदेव दोनों ही थे। इनका निधन रामानन्दजी के जन्म के पूर्व हो गया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं होगा। तुम एक-दो नहीं, कई संतानों की जननी बनोगी और वे स्वनामधन्य होंगे।"

रुक्मिणी तथा सुनन्दा ने एक बार पुनः जमीन से सिर लगाकर प्रणाम किया और फिर वापस चली गयीं।

संत अन्य कोई नहीं, स्वयं श्रीपादस्वामी थे। विट्ठल पंत की रूपरेखा को सुनते ही वे समझ गये कि यह चैतन्य आश्रम ही है जिसने छल करके उन्हें संन्यास दिलवा दिया है। काशी आते ही एक दिन उन्होंने पुकारा—"विट्ठल, यहाँ आओ।"

इस संबोधन को सुनते ही चैतन्य आश्रम चौंक उठा। श्रीपादस्वामी ने अनुभव किया कि उनका संदेह ठीक था।

चैतन्य आश्रम के पास आने पर उन्होंने कहा—"वत्स, छल करने से साधना क्षतिग्रस्त हो जाती है। भले ही सर्वसाधारण न समझें, पर सर्वशक्तिमान ईश्वर इसे जान लेते हैं। तुमने मुझे, अपनी पत्नी को, गाँव के निवासियों को धोखा दिया है। संन्यास-ग्रहण करते समय तुमने मुझसे कहा था कि तुम पत्नी-पुत्र हीन हो। गुरु से कपट करते तुम्हें लज्जा नहीं आयी?"

विट्ठल को स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि उनके गुरु तीर्थ-दर्शन के सिलसिले में उसके गाँव जायेंगे। वहाँ इनकी मुलाकात रुक्मिणी से हो जायगी। वे हतप्रभ होकर गुरु के कटुवचन चुपचाप सुनते रहे।

विट्ठल को चुप रहते देख श्रीपादस्वामी का क्रोध शांत हो गया। उन्होंने मृदु-स्वर में कहा—"अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। तुम्हारी पत्नी तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा कर रही है। मेरा आदेश है कि उस देवी को मनोकष्ट मत दो। घर वापस चले जाओ। गृहस्थ-जीवन में भी तुम साधना कर सकते हो। मेरी शुभकामनाएँ सर्वदा तुम्हारे साथ रहेंगी।"

विट्ठल पंत गुरु की आज्ञा मानकर आलन्दी वापस आ गये। मध्ययुग में ब्राह्मण-वाद अत्यन्त कठोर हो गया था। बार-बार मुसलमानों के आक्रमण और अत्याचारों के कारण कर्मकांडी पंडित उदार होने के बदले रूढ़ीवादी बनते गये। सारा हिन्दू-समाज इनके बंधनों में जकड़ता गया। ऐसे माहौल में विट्ठल पंत ने संन्यास-आश्रम त्यागकर पुनः गृहस्थ-आश्रम को अपनाया।

विट्ठल अपने यहाँ की समाज-व्यवस्था से अपरिचित नहीं थे। वे यह जानते थे कि यह एक अक्षम्य अपराध है, इसे समाज कभी क्षमा नहीं करेगा। संन्यासी बनने का अर्थ है—समाज तथा परिवार के निकट मृत बन जाना। संन्यासी कभी अपनी जन्म-भूमि में वापस नहीं आते।[1]

1. मनु संहिता के अनुसार संन्यास-ग्रहण करते समय छह अनुष्ठान करने पड़ते हैं। देवार्चना, पितृलोक-अर्चना, ऋषि-अर्चना, अपना श्राद्ध, बीज होम और शिखा-सूत्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आलन्दी आते ही उन्हें सारा समाज घृणा की दृष्टि से देखने लगा। वे समाज से बहिष्कृत कर दिये गये। गाँव के अंतिम छोर पर वे सपरिवार अछूतों सा जीवन व्यतीत करने को बाध्य हुए।

विट्ठल का वंश असाधारण था। निष्ठावान, कुलीन ब्राह्मण-परिवार में अध्ययन-चिंतन बराबर होता है। विट्ठल के पितामह त्र्यंबक पंत के गुरु नाथ-संप्रदाय के प्रतिष्ठाता गोरखनाथ थे। विट्ठल के पिता तथा माता को नाथ-संप्रदाय के दूसरे गुरु गहिनीनाथ से दीक्षा प्राप्त हुई थी। साधक-परिवार में जन्म लेने के कारण विट्ठल पंत में बचपन से ही वैराग्य उत्पन्न हो गया था। वे विद्वानों के निकट वेद-शास्त्रों का अध्ययन और विचार-विमर्श करते थे। यहाँ तक कि योग्य गुरु की तलाश में निरंतर तीर्थयात्रा पर चले जाते थे।

इसी यात्रा के दौरान वे अपनी जन्मभूमि आपेगाँव से आलन्दी आये। यहाँ सिद्धेश्वर मंदिर में ठहरे। कस्तूरी की गंध शीघ्र फैल जाती है। इनके ज्ञान और निर्मल स्वभाव को देखकर सिद्धोपंत कुलकर्णी आकर्षित हुए। वे इसी प्रकार के युवक की खोज में थे। उन्होंने कल्पना की कि ऐसे व्यक्ति के हाथ अगर अपनी बेटी सौंप दूँ तो गौरव की बात होगी।

एक दिन उन्होंने अपनी इच्छा विट्ठल के सामने प्रकट की। विट्ठल ने सिद्धोपंत को कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। वास्तव में विट्ठल सर्वदा अपने आत्मचिन्तन में इस प्रकार लीन रहते थे कि उनका ध्यान इन बातों की ओर नहीं जाता था। सिद्धोपंत ने अनुमान लगाया कि विट्ठल की इच्छा नहीं है।

कई दिनों बाद एक रात को विट्ठल ने स्वप्न में देखा कि स्वयं भगवान् विट्ठल उसे आदेश दे रहे हैं—"यह विवाह तुम कर लो। इससे तुम्हारे वंश का मुख उज्ज्वल होगा।"

दूसरे दिन विट्ठल स्वयं ही सिद्धोपंत के यहाँ जाकर अपनी स्वीकृति दे आये। सिद्धोपंत की बेटी रुक्मिणी से उनका विवाह हो गया। देखते ही देखते कई वर्ष बीत गये। इस बीच विट्ठल के माता-पिता का देहान्त हो गया। आपेगाँव वापस आने के कुछ दिनों बाद विट्ठल की स्थिति चिन्ताजनक हो गयी। सर्वदा पठन-पाठन में लगे रहनेवाला व्यक्ति निकम्मा हो गया। अपनी बेटी से यह समाचार पाकर सिद्धोपंत तत्काल आपेगाँव आकर अपने साथ बेटी-दामाद को लेकर आलन्दी चले आये।

त्याग। यह सब करने के बाद गुरु से दंड धारण करते हुए 'तत्त्वमसि'—'अहं ब्रह्मास्मि' या 'अयमात्मा ब्रह्म' कोई भी शब्द जपना पड़ता है।

अपना श्राद्ध करनेवाला पुनः जीवित नहीं हो सकता। पति-पुत्र, पत्नी, रिश्तेदार सभी के लिए मृत हो जाना पड़ता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुलकर्णी का विश्वास था कि यहाँ विट्ठल अपनी गृहस्थी की जिम्मेदारी को समझेगा, पर वे हमेशा पठन-पाठन में लगे रहे। गृहस्थी का मायाजाल उन्हें बाँध नहीं सका।

सहसा एक दिन विट्ठल ने अपनी पत्नी से कहा--"बहुत दिनों से काशी जाने की इच्छा हो रही है। तीर्थयात्रा हो जायगी और शायद उधर ही कहीं अपनी व्यवस्था करूंगा।"

रुक्मिणी अत्यन्त पतिपरायण स्त्री थी। उसने न तो पति को जाने से रोका और न साथ ले चलने के लिए अनुरोध किया। सहर्ष अनुमति देती हुई बोली--"जल्द वापस आइयेगा।"

काशी आकर विट्ठल पंत अध्ययन में जुट गये। सौभाग्य से एक दिन श्रीपाद-स्वामी से मुलाकात हो गयी। इनके ज्ञान और साधना से प्रभावित होकर विट्ठल ने संन्यास ग्रहण किया। अपना वास्तविक परिचय गुप्त रखा। संन्यास लेने के बाद विट्ठल का नया नाम चैतन्य आश्रम हुआ। श्रीपादस्वामी स्वयं जगद्गुरु शंकराचार्य के आश्रम शाखा के संन्यासी थे।

बारह वर्ष के बाद एक दिन पुनः उन्हें अपने गुरु के आदेश से आलन्दी वापस आना पड़ा। विट्ठल पंत अक्सर सोचते थे कि शायद आगे चलकर गाँववालों का क्रोध शान्त हो जायगा और उन्हें अपना खोया हुआ सम्मान फिर प्राप्त हो जाएगा। वे इसी आशा में लम्बी अवधि तक आलन्दी में निवास करते रहे। इस बीच में वे चार संतानों के पिता बने।

संतानों के नामकरण में उन्होने अपने ज्ञान का परिचय दिया, जिसका उपयोग अपने परवर्ती जीवन में बच्चों ने किया। 'निवृत्ति' बड़े लड़के का नाम था जिसका अर्थ है—समाप्ति, छुटकारा, मुक्ति, विश्राम। वे आगे संतान नहीं चाहते थे, पर इसके बाद ज्ञानदेव ने जन्म लिया। तीसरा सोपान यानी सीढ़ी और अन्त में आयी मुक्ता।

समाजपतियों की उपेक्षा के कारण विट्ठल का मन आलन्दी से उचट गया। उन्हें तीर्थयात्रा की सनक सवार हुई। रुक्मिणी से अनुरोध करते ही वह भी तैयार हो गयी। कई दिनों बाद विट्ठल सपरिवार नासिक आये। कुशावर्ती में नित्य स्नान करने के बाद त्र्यंबकेश्वर का दर्शन करते थे। इसके बाद ब्रह्मगिरि की फेरी करते थे। भिक्षा में जो कुछ मिलता, उसी से संतोष कर लेते थे। शेष समय अध्यात्म और ब्रह्म चिन्तन में व्यतीत होता रहा।

दैवयोग से एक दिन दुर्घटना हो गयी, जिसके कारण विट्ठल की जीवन-धारा में अद्भुत परिवर्तन हो गया। उस दिन मंदिर दर्शन करने के बाद जब सभी लोग घर वापस आ रहे थे तभी जंगल के भीतर से बाघ के गरजने की आवाज आयी। भय से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घबराकर जिसे जिधर मार्ग मिला, उधर भाग निकला। किसी को इतना होश नहीं था कि कौन, कहाँ है, पता लगाता। जंगल से बाहर सुरक्षित स्थान पर आने के बाद विट्ठल को पता लगा कि केवल निवृत्ति को छोड़कर सभी साथ आ गये हैं।

एक ऊँची चट्टान पर चढ़कर विट्ठल निवृत्ति को पुकारने लगे। उसकी आवाज जंगल में गूंजती रही, पर दूसरी ओर से कोई आवाज नहीं आयी। यह देखकर अनजाने आशंका से रुक्मिणी रोने लगी। माँ को रोते देख बच्चे भी रोने लगे।

विट्ठल ने कहा—"रोने से वह वापस नहीं आयेगा। लगता है किसी पेड़ या किसी जगह छिप गया है वर्ना उसकी आवाज सुनाई देती। अब कल सवेरे जंगल में जाकर खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन सभी लोग निवृत्ति की तलाश में जंगल के भीतर गये। इसी प्रकार तीसरे, चौथे दिन तक लोग खोजते रहे, पर निवृत्ति का कहीं पता नहीं चला। बाद में विट्ठल ने यह सोचकर संतोष कर लिया कि भगवान् ने उन्हें किसी पाप का दंड दिया है।

आठवें दिन अचानक निवृत्ति वापस आ गया। उसे देखते ही माँ ने कंठ से लगाया। पिता ने गोद में उठाया और भाइयों ने प्रणाम किया।

माँ के प्रश्न करने पर निवृत्ति ने बड़ी रोमांचकारी कहानी सुनाई। उसने कहा कि आप लोगों से बिछुड़ने के बाद मैं दायीं ओर अंजनी पर्वत की गुफा की ओर भागा। थोड़ी देर बाद वहाँ एक महात्मा आये और मुझे अपने साथ लेकर भीतर की ओर बढ़े। आगे एक स्थान पर काफी बड़ा घर था। दूसरे दिन मुझे उन्होंने अपने शिष्यों के साथ स्नान के लिए भेजा। स्नान करने के बाद जब मैं वापस आया तब उक्त महात्मा ने कहा—'निवृत्ति, आज तुम्हारे जीवन का महत्वपूर्ण दिन है। गुरु गोरखनाथ की कृपा से कल तुम्हारा आगमन हुआ और उन्हीं की प्रेरणा से आज तुम्हें दीक्षा दे रहा हूँ। अब यहाँ कुछ दिनों तक आसन, मंत्र आदि सीखना पड़ेगा। इसके बाद ही तुम घर जा सकोगे।' श्रद्धेय गुरुवर गहिनीनाथ मुझे ध्यान, आसन और यौगिक क्रियाओं की शिक्षा देते रहे। आज दोपहर के बाद उनसे अनुमति प्राप्त होने पर मैं चला आया।

"निवृतीं गयनीं कृपा केली पूर्ण।
कुल हे पावन कृष्ण नामे॥"

गहिनीनाथ का नाम सुनते ही विट्ठल समझ गये कि मेरे माता-पिता के गुरु ने निवृत्ति को अपना मंत्र-शिष्य बनाया है। उन्हें यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उनका बालक नाथ-संप्रदाय में दीक्षित होने पर भी कृष्ण-भक्त बनता जा रहा है।

बड़े भाई की साधना से प्रभावित होकर ज्ञानदेव ने उनसे दीक्षा ली। ज्ञानदेव से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोपान और मुक्ता ने दीक्षा ली। इस प्रकार विट्ठल की सभी संतानें नाथ-संप्रदाय के अंतर्भुक्त हो गयीं।

"गहिनी ने दया केली निवृतिनाथा। बालक असतां योगरूप।
तेथूनी ज्ञानेश पावले प्रसाद। एक निष्ठभाव तुकोबा चरणीं॥
गृहणीं बहिणी लाघलीसे।"

पिता से वेद-उपनिषद, शास्त्रों का अध्ययन करते हुए लड़के वड़े होते गये। अब विट्ठल ने निश्चय किया कि वंश परंपरा के अनुसार बच्चों का यज्ञोपवित होना चाहिए और यह कार्य अपनी जन्मभूमि में जाकर सम्पन्न करना चाहिए। आपेगाँव आकर विट्ठल ने स्थानीय कर्मकांडियों से निवेदन किया कि कृपया अब मुझे अपनी जाति में सम्मिलित कर लीजिए। मुझे अपने बच्चों का यज्ञोपवित-संस्कार करना है। बदले में प्रायश्चित के लिए आप लोग जो दंड देंगे, उसे मैं स्वीकार कर लूंगा।

ब्राह्मणों ने धर्म-ग्रंथों की छानबीन करने के बाद निर्णय दिया—"संन्यास लेने के बाद तुम पुनः गृहस्थ-आश्रम में आये हो। इस प्रकार दोनों आश्रमों को तुमने कलंकित किया है। इसका एक मात्र प्रायश्चित है——मृत्यु। यह इसलिए कि भविष्य में तुम्हारी तरह अन्य कोई अपराध करे तो तुम्हारे उदाहरण से उसे शिक्षा प्राप्त हो। अगर हम तुम्हें क्षमा कर देंगे तो भविष्य में लोग तुम्हारी तरह पापाचार करते रहेंगे। इस प्रकार हमारा धर्म, हमारा समाज, नैतिकता आदि नष्ट हो जायेंगे।"

कर्मकांडियों के इस निर्णय को सुनकर विट्ठल सन्न रह गये। यह एक ऐसा निर्णय था जिसे सहज ही स्वीकार लेना आसान नहीं था। कई दिनों तक मानसिक यंत्रणा भोगने के बाद अपनी संतानों की मंगल कामना के लिए पंडितों का निर्णय उन्होंने स्वीकार कर लिया। उन्हें इस बात पर संतोष हुआ कि उनके बलिदान के पश्चात् इन निष्पाप बच्चों को उचित सम्मान मिलेगा।

अपने चारों बच्चों को असहाय अवस्था में छोड़कर एक दिन विट्ठल अपनी पत्नी के साथ चुपचाप चल दिये। कहा जाता है कि प्रयाग में जाकर इन दोनों ने जल-समाधि ले ली।

विट्ठल पंत का बलिदान तत्कालीन समाज के लिए एक ऐतिहासिक घटना थी, जिसका दूसरा उदाहरण देना संभव नहीं है। प्राचीन आदर्शों की दुहाई देनेवाले तत्कालीन समाजपतियों के इस बहशीपन को किस रूप में लेंगे, यह वही जाने।

माता-पिता के चले जाने के बाद चारों बच्चे इतने असहाय हो गये कि इन्हें भीख मिलना कठिन हो गया। न जाने कितने दिन जंगली फल खाते रहे। उपवास इनके जीवन का शृंगार बन गया। आखिर इस समस्या के समाधान के लिए ज्ञानदेव ने आगे बढ़कर आलन्दी के समाजपतियों से प्रश्न पूछा। उन लोगों ने जवाब दिया——"इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बात का निर्णय पैठण के विद्वान् करेंगे। वहाँ के पंडितों का निर्णय सर्वमान्य होगा।"

पैठण के ब्राह्मणों ने इन्हें दुत्कारते हुए कहा--"संन्यासी के पुत्र के लिए प्रायश्चित की आवश्यकता नहीं। अब तुम लोग अपनी शुद्धि के लिए लज्जा त्यागकर गाय, कुत्ते और चांडालों को साष्टांग प्रणाम करते रहना। इससे तुम्हारे पाप दूर हो जायेंगे।"

पंडितों के इस निर्णय को सुनकर निवृत्ति ने कहा--"मैं तो निवृत्ति हूँ, प्रवृत्ति में मेरी तनिक भी आसक्ति नहीं है। मैं राजयोगी हूँ।"

ज्ञानदेव ने कहा--"मैं सभी शास्त्रों का ज्ञाता हूँ।"

सोपान ने कहा--"लोगों को भगवत-आराधना में लगाना मेरा मुख्य कार्य है।"

मुक्ताबाई ने कहा--"मैं तो मुक्त हूँ।"

इन नन्हें बच्चों के मुख से इस प्रकार की बातें सुनकर पंडितों का समूह हतप्रभ हो गया। तभी एक पंडित ने प्रश्न किया--"यह ठीक है कि निर्णय के अनुसार तुम्हारे माता-पिता ने मृत्यु को स्वीकार किया, पर इस बात का तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि तुम लोग शुद्ध हो?"

ज्ञानदेव ने कहा--हमारा विश्वास है कि हम सभी पूर्ण रूप से शुद्ध हैं। आप कैसा प्रमाण चाहते हैं, आज्ञा कीजिए।

शुद्धता का प्रमाण क्या हो, इस दिशा में पंडितों की बुद्धि कुंठित हो गयी। ब्राह्मणोचित सभी कार्यों से ये बालक परिचित थे। उनके मन में केवल इनके प्रति घृणा थी जिसे वे भुला नहीं पा रहे थे। तभी एक कठबुद्धिवाले पंडित ने कहा--"तुम्हारी शुद्धि का अर्थ है, भैंस का वेद पढ़ना। क्या सामने खड़ी भैंस के मुँह से वेदमंत्र का उच्चारण करा सकते हो? यह कार्य तुमसे नहीं हो सकेगा। ठीक इसी प्रकार तुम कभी शुद्ध नहीं हो सकते।"

ज्ञानदेव चुपचाप भैंस के पास जाकर खड़े हो गये। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले--"हे ज्ञान के देवता, आप समागत पंडितों को अपने श्रीमुख से वेदमंत्रों का उच्चारण करते हुए यह प्रमाणित कर दो कि हम सब शुद्ध हैं।"

ज्ञानदेव की बातें सुनते ही पंडितों का समूह अट्टहास कर उठा और दूसरे ही क्षण गंभीर स्वर में भैंस वेदमंत्रों का उच्चारण करने लगी। यह एक ऐसा चमत्कार था जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी।

अन्त में पंडितों ने भीत स्वर में कहा--"बेटा, ज्ञानदेव, निस्सन्देह तुम लोग शुद्ध हो। हम सब एक मत से इसे स्वीकार करते हुए तुम्हें शुद्धि-पत्र दे रहे हैं। हम सब अज्ञानी कर्मकांडी हैं। तुम लोगों के प्रति किये गये रूढ़ व्यवहार के लिए क्षमा चाहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञानदेव ने भैंस से वेदमंत्र का पाठ कराया है, यह समाचार विद्युत गति से भारत के विभिन्न क्षेत्रों से होता हुआ तिब्बत तक पहुँच गया।[1]

क्षमा-याचना करने के बाद भी पैठण के पंडितों ने अपने कुटिल चरित्र का परिचय दिया। श्री पुरुषोत्तम यशवंत देशपांडे ने लिखा है--"आशातीत पराजय और उपहास के पात्र बने महन्तों ने विट्ठल पंत के चारों बच्चों को अपने पिता के कलंक से मुक्तकर दिया। किन्तु ऐसा करते वक्त वे अपनी नीचता और क्षुद्रता से बाज न आये। उन्होंने शुद्धि-पत्र में यह शर्त जोड़ दी कि इनमें से कोई भी बालक विवाह और सन्तानोत्पत्ति नहीं करेगा, क्योंकि इससे हिन्दू-समाज में अपवित्र रक्त-दूषण का भय है। सनातन हिन्दू-धर्म के पतन की यह चरम सीमा थी। इस कारण ज्ञानदेव को जो क्लेश हुआ होगा, वह अन्ततः मानवता के प्रति अपार करुणा में परिपक्व हुआ। पीड़ित-मानवता के उद्धार का यही भावावेग धर्म की एक नयी सृष्टि तथा नयी दृष्टि और शाश्वत जीवन-धर्म में पल्लवित हुआ।"[2]

शुद्धि-पत्र पाने के बाद विट्ठल पंत के बच्चों का मानसिक-घुटन समाप्त हो गया। ज्ञानदेव ने सोचा कि हम भले ही विवाह न करें, पर अब समाज में रह तो सकेंगे। हमारे साथ अछूतों जैसा व्यवहार नहीं होगा। तीन वर्ष तक सभी भाई पैठण में वैदिक-शिक्षा ग्रहण करते रहे। इसके बाद नेवासा की ओर चल पड़े।

मार्ग में एक अद्भुत घटना हुई। नेवासा के समीप आने पर इन लोगों ने देखा कि श्मशान में एक महिला पति के शव के आगे विलाप कर रही है। ज्ञानदेव का हृदय करुणा से विगलित हो उठा। आगे बढ़कर उन्होंने प्रश्न किया--"क्या बात है?"

शववाहकों में से एक व्यक्ति ने उत्तर दिया--"यह महिला मृत व्यक्ति सच्चिदानन्द की पत्नी है। अब इस बेचारी का कोई सहारा नहीं रहा।"

"सच्चिदानन्द?" ज्ञानदेव अस्फुट स्वर में बुदबुदाये। इसके बाद निवृत्तिनाथ की ओर देखते हुए उन्होंने कहा--"गुरुदेव, क्या सत्, चित्, आनन्द की मृत्यु हो सकती है?"

निवृत्तिनाथ ने कहा--"नहीं। सत्, चित्, आनन्द की मृत्यु नहीं हो सकती।"

गुरु की बातें सुनते ही ज्ञानदेव मृतक के पास बैठकर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले--"उठो, सच्चिदानन्द। तुम्हारी मृत्यु नहीं हुई है।"

वह व्यक्ति धीरे-धीरे उठ बैठा। यह दृश्य देखकर उसके सभी साथी हर्ष से नृत्य करने लगे। आगे चलकर यह व्यक्ति ज्ञानदेव का शिष्य बना।

नेवासा आने के बाद ज्ञानदेव अपने भीतर विशेष प्रकार की एक हलचल अनुभव

---

१. इस बात की चर्चा श्रीमती ब्लावट्स्की की पुस्तक 'द वायस आफ सायलेन्स' में है।
२. ज्ञानदेव, पृष्ठ ६८।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करने लगे। उन्हें लगा जैसे वे मुक्त पुरुष, बंधनहीन, अहंमुक्त हैं। निरंतर उनकी आत्मा जनकल्याण के लिए उन्हें प्रेरित करने लगी। उन्होंने अपने गुरु से इस बात की चर्चा करते हुए अनुमति माँगी। गुरु से आज्ञा प्राप्त होते ही वे श्रीमद्भागवत पर टीका लिखने लगे। इसी टीका का नाम है—'ज्ञानेश्वरी'। ज्ञानेश्वरी के ९०० श्लोकों को उनके शिष्य सच्चिदानन्द ने लिपिबद्ध किया है। ग्रंथ के अन्त में ज्ञानदेव ने लिखा है—"श्री निवृत्तिनाथ का शिष्य मैं ज्ञानदेव कहता हूँ कि उस गीता नामक संवाद का अठारहवाँ अध्याय पूर्ण कलश है। अब इस ग्रंथ की पवित्र सम्पत्ति से प्राणी मात्र को उत्तरोत्तर सम्पूर्ण सुखों की प्राप्ति हो। शक संवत् बारह सौ बारह में ज्ञानेश्वर ने गीता की यह टीका की और सच्चिदानन्द बाबा ने बड़े प्रेम और ध्यान से इसे लिखा है।"[1]

उन दिनों गीता की एक मात्र श्रेष्ठ टीका शंकराचार्य ने की थी। शेष विद्वान् एक-दूसरे का खण्डन-मण्डन करते रहे। इससे जनसाधारण में भ्रम फैल गया था। ठीक इसी समय ज्ञानदेव की टीका ने अद्भुत प्रभाव डाला।

सच तो यह है कि ज्ञानेश्वर की टीका अन्य सभी टीकाकारों से भिन्न है। आज तक इतनी विद्वतापूर्ण टीका किसी भी विद्वान् ने नहीं की है। संत ज्ञानदेव ने 'ज्ञानेश्वरी' तथा 'अमृतानुभव' नामक दोनों ग्रंथों में जैसे विचार हैं, इतनी कम उम्र का बालक पृथ्वी के इतिहास में कभी प्रकट नहीं कर सका है। निश्चित है कि ज्ञानदेव के स्थूल शरीर में ईश्वरीय शक्ति कार्य करती रही।

संत ज्ञानेश्वर के समकालीन महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सत नामदेव ने एक जगह लिखा है—"ज्ञानराज (ज्ञानदेव) मेरे लिए योगमाता जैसे हैं, उन्हीं की अनुकम्पा से मेरे जैसे अज्ञानी जीव को समस्त आत्मज्ञान सुलभ हो सका। उन्होंने अध्यात्म विद्या के रहस्य समझकर मेरे हित अमर-जीवन की ज्योति जगा दी है। उन्होंने मेरी अहं की सारी गुत्थियाँ बाँधकर मुझे यथार्थ का साक्षात्कार करा दिया। मराठी में गीता पर उनकी अद्भुत टीका ने सत्य या ईश्वर के अनुसंधित्सु सभी लोगों के लिए मार्ग खोल दिया। विश्व के समस्त मनुष्यों के प्रति उनकी अपार करुणा का यह स्पष्ट प्रमाण है। उनकी ज्ञानेश्वरी सत् ज्ञान से इतना परिपूर्ण है कि जो उसका एक अनुच्छेद भी प्रति दिन समझ लेंगे, उन्हें शीघ्र ही जीवन के परम-रहस्य का बोध हो जायगा।"

१. निवृत्तिनाथ से दीक्षा लेने के बाद से इनमें भाई भाई या भाई बहन का नाता समाप्त हो गया। वे अपने गुरुओं को गुरु के रूप में मानते थे। ज्ञानदेव ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र निवृत्तिनाथ को गुरु के रूप में स्मरण किया है। वे यह मानते रहे कि उन्होंने अपने जीवन में जो कुछ कार्य किया है, वह सभी गुरु-कृपा से हुआ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संत ज्ञानेश्वर अपनी गीता के बारे में एक स्थान पर कहते हैं—"गीता का तत्व निरूपित करने में मैंने अपना सर्वस्व लगा दिया ताकि लोग समझ सकें कि धर्म क्या है। वे जन्म से मृत्यु तक अपना जीवन जीते हुए स्वयं को और अपनी गतिविधियों को सही दृष्टि से देख सकें।"

अगर कोई भी पाठक ज्ञानेश्वरी का अध्ययन करे तो उसे यज्ञ, जप, ध्यान, साधना के बारे में जानकारी प्राप्त हो जायगी। योगाभ्यास के बारे में संत ज्ञानेश्वर लिखते हैं—

"योगाभ्यास करने के लिए सबसे पहले एक उपयुक्त स्थान देखना चाहिए। वह स्थान ऐसा होना चाहिए कि यदि विश्राम करने की इच्छा से आदमी वहाँ जाकर बैठे तो फिर वहाँ से उसका उठने का जी ही न चाहे। वह स्थान ऐसा हो कि वहाँ के दृश्य से ही वैराग्य दूना हो जाय। वहाँ यदि संतजनों का निवास हो तो उससे संतोष की पुष्टि होती है और मन को धैर्य का सहारा मिलता है जहाँ योगाभ्यास आपसे आप होता हो, जहाँ की रमणीयता के कारण हृदय को आत्मानंद का अनुभव हो, हे अर्जुन, जिस स्थान पर पहुँचते ही पाखंडियों के मन में भी तपश्चर्या करने की बुद्धि उत्पन्न हो, जहाँ कोई रास्ता चलता आदमी अचानक पहुँच जाने पर यदि स-काम हो तो भी वह वहाँ से लौटने या हटकर जाने की बात बिलकुल भूल जाय ऐसा स्थान न रहनेवालों को भी रोक लेता है, भटकनेवालों को भी स्थिर करता है और वैराग्य को थपकी लगाकर जाग्रत करता है। वह स्थान ऐसा होना चाहिए कि उसे देखते ही विषय-सुखों के लंपट को भी ऐसा जान पड़े कि मैं संसार का सुंदर-राज्य छोड़कर यहीं शांतिपूर्वक पड़ा रहूँ। बस वह स्थान ऐसा रमणीय होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वह स्थान शुद्ध होना चाहिए कि वहाँ आँखों को साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ही दिखाई पड़ता हो। उस स्थान में एक और विशेष गुण यह होना चाहिए कि वहाँ योगाभ्यास करनेवाले साधकों की बस्ती हो और दूसरे लोगों का आना-जाना न हो। वहाँ ऐसे बड़े-बड़े और वृक्ष भी होने चाहिए जो जड़ से ही अमृत के समान मीठे और सदा फल देनेवाले हों और वे फल उनमें बारहों मास लगते हों। साथ ही उस स्थान पर वर्षाकाल के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में भी पग-पग पर पानी मिलता हो और विशेषतः वहाँ पानी के बहते हुए झरने भी यथेष्ट होने चाहिए। वहाँ गरमी बहुत ठिकाने की और साधारण पड़ती हो और शीतल तथा शांत वायु मंद-मंद बहती हो। वह इतना शांत होना चाहिए कि जल्दी किसी प्रकार का शब्द वहाँ न होता हो और पशुओं आदि की कौन कहे, तोते या सुनगे तक का भी वहाँ प्रवेश न होता हो। वह स्थान ऐसा होना चाहिए कि पानी के सहारे रहनेवाले हंस और दो-चार सारस आदि पक्षी कहीं-कहीं दिखाई पड़ते हों और कभी-कभी कोई कोयल वहाँ आ बैठा करती हो। इस प्रकार सदा तो नहीं, पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हाँ कभी-कभी कुछ मोर भी आया-जाया करते हों तो कोई हर्ज नहीं। ऐसे स्थान का चुनाव सावधानी से करना चाहिए।"[1]

योग-साधना के लिए स्थान कैसा हो, इसकी रूपरेखा का वर्णन हमें यह बताता है कि ऐसे ही स्थानों पर ही साधना फलीभूत होती है अर्थात् इष्ट के दर्शन होते हैं। ज्ञानेश्वरी में छठे अध्याय में १२ से १६वें श्लोक तक योग सम्बन्धी व्याख्या अद्भुत है।

अपनी सिद्धि के बारे में ज्ञानदेव ने स्पष्ट रूप से लिखा है—

"मैं अपने अमृत-अनुभव की बात करता हूँ जो मेरे संपूर्ण अनुभवों का निचोड़ है। सभी मनुष्यों के अनुभव उनके जो मुक्त हैं, उनके जो मुक्त नहीं हैं और उनके जो मुक्ति के आराधक हैं—मूलतः एक ही महत्ता रखते हैं। परिपक्वता के क्षण में अनुभूति-रहस्य का अमृत चखते ही उनके विभेद समाप्त हो जाते हैं। यही सभी मनुष्यों की स्वाभाविक नियति है। यह प्रत्येक युवती में छिपे यौवन-पुष्प की तरह है, वह तभी खिलता है जब वह अपने प्रियतम से जुड़ती है या यों कहें कि यह उन वृक्षों की भाँति हैं जिनमें फूलने और फलने की क्षमता सदैव रहती है। परंतु बसंत के आगमन पर यह क्षमता हर शाखा-प्रशाखा फूट निकलती है और फिर आकाश को चूमने लगती है। इस प्रकार सभी मनुष्य मेरे अनुभव के इस अमृत की मिठास चख सकते हैं। बशर्ते वे इन शब्दों को मर्म में बैठाने का प्रयत्न करें और उस सिंहासन का साक्षात्कार करें जो भीतर है।"[2]

ज्ञानदेव सन् १२९० ई० में ज्ञानेश्वरी पूर्ण कर चुके थे। उन दिनों उनकी उम्र १५ वर्ष थी। एक १५ वर्ष का बालक योग, ध्यान, अध्यात्म, दर्शन आदि के तथ्य बिना ईश्वर की अनुकम्पा के कैसे लिख सका? यहीं आकर आधुनिक विद्वानों को असमंजस्य का सामना करना पड़ता है और वे ज्ञानदेव की प्रतिभा पर अविश्वास करने लगते हैं।

इस सम्बन्ध में ज्ञानदेव ने स्वयं ही स्पष्ट किया है कि यह सब गुरु की कृपा से हुआ है। उनकी एषणा-शक्ति के प्रभाव के कारण वे इस ओर प्रवृत्त हुए हैं। इसमें संदेह नहीं कि बिना गुरु-कृपा से इष्ट के दर्शन नहीं होते और न साधना में सफलता मिलती है।

गहिनी ने दया केली निवृत्तिनाथा।
बालक असतां योगरूप॥
तेथूनी ज्ञानेश पावले प्रसाद।
एक निष्ठ भाव तुकोबा चरणीं॥

१. ज्ञानेश्वर—अनु० बाबू रामचन्द्र वर्मा, अ० ६, श्लोक १२।
२. अमृतानुभव।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञानदेव ने १२वें तथा १४वें अध्याय में विस्तार से गुरु-महिमा का वर्णन किया है। एक स्थान पर वे लिखते हैं——

"हे गुरु-कृपा-दृष्टि, तू वैभवशाली है और अपने सेवकों की कामना पूर्ण करनेवाली कल्पलता है तो भी मुझे ग्रंथ निरूपण करने की आज्ञा दे। तू मेरे द्वारा इस निरूपण में नौ रसों का सागर भरवा दे, उत्तम रत्नों का आगर तैयार होने दे और भगवंत के सच्चे अर्थ का पर्वत उठने दे। तू मुझमें ऐसी सामर्थ्य प्रदान कर जिसमें मैं श्रीकृष्ण के गुणों का ठीक-ठीक वर्णन कर सकूँ और श्रोताओं को भी श्रवण के आनंद का साम्राज्य प्राप्त होने दे। दास की यह प्रार्थना सुनकर गुरु ने उसकी ओर प्रसन्न दृष्टि से देखा और कहा——'अब गीता के अर्थ का निरूपण प्रारंभ करो। प्रस्तावना का अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं।' इससे शिष्य को स्वभावतः बहुत अधिक आनन्द प्राप्त हुआ।"

× × ×

ज्ञानदेव जिन दिनों पैठण में ज्ञानेश्वरी लिख रहे थे, उन्हीं दिनों एक घटना हो गयी। आपके ज्ञान से प्रभावित होकर एक ब्राह्मण ने उन्हें अपने यहाँ आमंत्रित किया। ब्राह्मण के पिता का श्राद्ध दिवस था। पितरों के लिए खाली आसन बिछाने का नियम है। माना जाता है कि पिण्ड-दान के समय पूर्वजों की आत्माएँ सूक्ष्म रूप में आकर उसे ग्रहण करती हैं। पिण्ड-दान के पूर्व ही ज्ञानदेव ने कहा——"आगन्तव्यम"।

इतना कहना था कि ब्राह्मण के तीन पूर्व पुरुष आकर निर्धारित आसनों पर प्रत्यक्ष रूप से बैठ गये और पिण्ड ग्रहण किया।

पैठण से नेवासा और फिर वहाँ से सभी भाई-बहन आलंदी चले आये। दीपावली के दिन निवृत्ति ने कहा——"मुक्ता, आज मांड (चिल्ला की तरह का एक पकवान) खाने की इच्छा हो रही है।"

मुक्ता ने कहा——"ज्ञान भैया भिक्षा लेने गये हैं। उनके आने पर बना दूँगी। लेकिन बनाऊँगी किसमें? बरतन तो सब चोर उठा ले गये हैं। कोई हर्ज नहीं। मैं कुम्हार के यहाँ से मिट्टी का तवा ले आती हूँ।"

मार्ग में सहसा विसोबा चाटी से मुलाकात हो गयी। उसके प्रश्न करने पर मुक्ताबाई ने सरल भाव से अपना उद्देश्य बता दिया।

"माँगेंगे भीख और खायेंगे मांड। देखता हूँ तुझे कौन कुम्हार बरतन देता है।" इतना कहकर विसोबा उसके पीछे लग गया।

मुक्ता जिस कुम्हार के पास जाती, वहीं विसोबा पहुँचकर कुम्हार को धमकी देता——"अगर तुमने बरतन दिया तो जाति से निकाल दूँगा।"

यह धमकी काम कर जाती। रोती-कलपती मुक्ता घर वापस आ गयी। उसकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उदास शक्ल देखकर ज्ञानदेव ने कहा—"अरी पगली, रोती क्यों है। तुझे मांड बनानी है। चल, तेरे लिए इन्तजाम कर देता हूँ।"

योगिराज ज्ञानदेव ने साधना के माध्यम से अपनी पीठ को अग्निमय बना लिया। पीठ गरम तवे की तरह लाल हो गयी। मुक्ताबाई उस पर मांड़ सेंकती रही।

मांड़ बन जाने के बाद मुक्ताबाई ने कहा—मैया, मांड़ बना चुकी। अब पीठ को शीतल बना लो।"

मांड़ खाते समय निवृत्ति ने ज्ञानदेव से कहा—"योग का उपयोग साधारण कार्यों के लिए नहीं करना चाहिए।"

"जो आज्ञा गुरुदेव।" ज्ञान ने कहा—"भविष्य में इस बात का ध्यान रखूंगा।"

तीनों भाई भोजन कर चुके थे। ठीक इसी समय एक कुत्ता आया और मुक्ताबाई के हिस्से का मांड़ लेकर भाग गया। निवृत्ति ने कहा—"मुक्ता, तू ने कुत्ते को मारा क्यों नहीं। अब तू क्या खायेगी ?"

मुक्ताबाई ने कहा—"वह तो विट्ठल था मैया। कैसे मारती ?"

ज्ञानदेव ने हँसकर पूछा—"माना कि कुत्ता विट्ठल था, पर विसोबा चाटी ?"

"वह भी विट्ठल हैं मैया।"

विसोबा आड़ में खड़ा सारा दृश्य देख रहा था। जबसे ज्ञानदेव आलंदी में आये हैं तभी से वह इन लोगों को घृणा की दृष्टि से देखता आया। सर्वदा इन्हें नुकसान पहुँचाने का प्रयत्न करता है। इसी के प्रयत्न से ज्ञानदेव के यहाँ बरतनों की चोरी हुई। इस समय वह एक कुत्ते को पकड़ लाया था। इनकी सहनशीलता और उदारता देखकर उसका अन्तर्मन रो पड़ा। अपने को वह सम्हाल न सका। भीतर आकर मुक्ताबाई के चरणों पर गिर पड़ा।

इस घटना के कुछ दिनों बाद निवृत्तिनाथ की आज्ञा से मुक्ताबाई ने विसोबा चाटी को दीक्षा दी। अपने गुरु की कृपा पाकर विसोबा योग-साधना के द्वारा प्रसिद्ध संत बन गया। अब विसोबा चाटी संत बनने के बाद विसोबा खेचर हुए। ज्ञातव्य है कि इन्हीं विसोबा खेचर से महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत नामदेव ने दीक्षा ली थी।

ज्ञानदेव की दो महत्वपूर्ण कृतियाँ 'ज्ञानेश्वरी' तथा 'अमृतानुभव' की ख्याति बढ़ती गयी। अब ज्ञानदेव संत ज्ञानेश्वर के नाम से भारतीय जनता में प्रसिद्ध हो गये। इनके चमत्कारों का वर्णन सुनकर तत्कालीन योगिराज चाँगदेव को अपार विस्मय हुआ।

उन दिनों चाँगदेव को भारत का महान् योगी माना जाता था। कहा जाता है कि वे १४०० वर्ष से योग-साधना करते आ रहे हैं। ब्रह्म-विद्या के एक मात्र संचालक थे। संपूर्ण भारत में उनके अगणित शिष्य थे। ऐसे महान् संत की साधना को पारकर एक किशोर बालक कैसे उन्नति के शिखर पर चढ़ गया ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाँगदेव ने सोचा कि सत्यासत्य की जानकारी के लिए एक पत्र लिखूँ। कागज-कलम लेकर चाँगदेव सोचने लगे कि ज्ञानदेव के लिए कौन-सा संबोधन उचित होगा ? "तीर्थ स्वरूप" (पिताजी) लिखूँ या "चिरंजीव" (पुत्र) ? यह ठीक है कि उम्र में मैं काफी बड़ा हूँ, साधना के क्षेत्र में कौन बड़ा है ? इसी ऊहापोह में उन्होंने बिना कुछ लिखे सादा कागज भेज दिया।[1]

पत्रवाहक ने वह कागज ज्ञानदेव को दिया। वे उसे लेकर हँस पड़े। बाद में उस पत्र को उन्होंने अपने भाइयों को दिया। अन्त में जब मुक्ताबाई के हाथ में वह पत्र आया तो वह खिलखिलाकर हँस पड़ी--"हमारे योगीजी १४ सौ वर्ष तपस्या करने के बाद भी इस कागज की तरह कोरे रह गये।"

यह एक ऐसा व्यंग्य था जिसे सुनकर योगिराज निवृत्तिनाथ चौंक उठे। कहीं योगिराज चाँगदेव इस बात को सुनकर नाराज न हो जायँ। निवृत्तिनाथ ने पत्रवाहक से कहा - "आप इस वाचाल लड़की की बातों पर ध्यान न दें। हम सभी उस महान् योगी से मिलने के लिए आतुर हैं और उनके द्वारा पत्र में व्यक्त किये गये विचारों का सम्मान करते हैं। हमारा आग्रह है कि चाँगदेव महाराज अपने चरण-रज से हमारी कुटिया पवित्र करें। आप हमारी ओर से हमारा प्रणाम निवेदित करें।

पत्रवाहक अवाक् रह गया। सादे कागज में यह सब बातें कहाँ है ? योगियों का रहस्य समझना कठिन है। सभी को प्रणाम करने के बाद पत्रवाहक चला गया।

निवृत्तिनाथ का संदेश पाते ही चाँगदेव यात्रा के लिए निकले। अपने योग का प्रभाव दिखाने के लिए सिंह पर सवार हुए। हाथ में 'समिधा' की जगह सर्प का चाबुक लिया। उनके आगे-पीछे हजारों शिष्य जय-जयकार करते हुए चल पड़े।

आलंदी के समीप आते ही गाँव में हलचल मच गयी। कुछ लोग चाँगदेव के आगमन का समाचार देने के लिए दौड़े। उस समय ज्ञानदेव अपनी बहन तथा भाइयों के साथ एक टूटी झोपड़ी की दीवार पर बैठे थे। चाँगदेव के आगमन का समाचार पाकर उन्होंने सोचा कि आगे बढ़कर उनका स्वागत करना चाहिए। पास में कोई सवारी नहीं थी और चाँगदेव गाँव के सिरे पर थे। जिस दीवार पर सभी लोग बैठे थे, उसे थपथपाते हुए ज्ञानदेव ने कहा--"हे प्रिय दीवार, जरा तू आज सक्रिय हो जा ताकि हम महान् संत का स्वागत कर सकें।"

आलंदी के लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ज्ञानदेव अपने भाई-बहन के साथ चलती हुई दीवार पर बैठे आगे बढ़े जा रहे हैं। यह दृश्य देखकर स्वयं चाँगदेव हतप्रभ हो गया। उसे समझते देर नहीं लगी कि भले ही उम्र में मैं बड़ा हूँ, पर साधना के क्षेत्र में ज्ञानदेव मुझसे श्रेष्ठ है।

१. नामदेव : श्रीमाधव गोपाल देशमुख, पृ० २४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुरत सिंह से उतरकर उन्होंने ज्ञानदेव को साष्टांग प्रणाम किया। यही नहीं, उन्होंने ज्ञानदेव से शिक्षा ग्रहण की। कुछ दिनों बाद ज्ञानदेव ने अपने चाँगदेव के लिए 'चाँगदेव पासष्ठी' नामक ग्रंथ लिखा--

"हे प्रिय चाँगदेव, मेरी कितनी इच्छा है कि तुम्हारे लिए मुझे न कुछ करना पड़े, न कुछ करना पड़े। किन्तु प्रेमावेग में मेरा 'मैं-पन' इस समय दुर्दम हो रहा है। ज्योंही मैं तुम्हारी आत्मा का दर्शन करता हूँ त्योंही मेरा 'मैं-पन' शून्य में विलीन हो जाता है और उसी के साथ तुम्हारा 'तू-पन' भी। 'मैं' और 'तुम' अपनी आत्माओं के मिलन में खो गये हैं। मैं पात्रों की यह माला ऐसी अवस्था में गूँथ रहा हूँ जो कि प्राणियों की निद्रा से परे की नींद जैसी है और साथ ही चिरंतन जागृति भी है जिसने मानो जीवों की साधारण जागृति को अपने में निगल लिया है।"

महाराष्ट्र में बहुचर्चित वारकरी पंथ के भक्ति-मार्ग के लिए 'ज्ञानेश्वरी' अपरिहार्य ग्रंथ बन गया है। वारकरी-पंथ के संस्थापक संत ज्ञानेश्वर थे जिसे पुष्ट किया था--संत नामदेव ने।

ज्ञानदेव के सम्बन्ध में जिस तरह की शंकाएँ आज तक की जाती हैं, ठीक इसी प्रकार की शंकाएँ उनके जीवितकाल में की जाती थी। संभवतः ज्ञानदेव को इस बात की जानकारी हो गयी थी। ऐसे शंकालु लोगों की शंका दूर करने के लिए एक दिन ज्ञानेश्वरजी ने घोषणा की कि वे समाधि लेंगे। यह एक ऐसी घोषणा थी जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनके समकालीन अनेक संत-योगी थे, पर ऐसा साहस किसी ने नहीं किया।

आलंदी के सिद्धेश्वरी मंदिर के पास एक गुफा खोदी गयी। संत ज्ञानदेव समाधि लेंगे, यह समाचार चारों ओर फैल गया। नासिक, पैठण, पंढरपुर आदि स्थानों से अनेक संत-महात्मा आये। दो दिनों तक कीर्तन होता रहा।

२५ अक्टूबर, सन् १२९६ ई० गुरुवार (वि० सं० १३५३, मार्गशीर्ष १३) को दोपहर के वक्त समाधि में जाने के लिए ज्ञानदेव उठे। कहा जाता है--स्वयं भगवान् पांडुरंग ने उन्हें तिलक लगाया, गले में माला पहनायी। नामदेव ने समाधिस्थल की सफाई की। इसके बाद ज्ञानदेव का एक हाथ साक्षात् पांडुरंग और दूसरा निवृत्तिनाथ ने पकड़ा। ज्ञानदेव समाधिस्थल पर बैठकर इष्ट की स्तुति करने लगे।

स्तुति समाप्त होते ही संत ज्ञानेश्वर ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। निवृत्तिनाथ ने ऊपर से पत्थर की पटिया रखकर उसे ढक दिया। यह दृश्य देखकर नामदेव पछाड़ खाकर गिर पड़े और बेहोश हो गये।

इस घटना के बारे में प्रत्यक्षदर्शी संत नामदेव ने लिखा--"मेरी पीड़ा को कौन जान सकता है? प्रेम विगलित होकर मेरी आँखों से अश्रुधारा बह निकला। शब्दों ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परम मौन में व्याघात पहुँचाने से इनकार कर दिया। मैंने स्वयं अपना जीवन उड़कर जाते देखा। वह अनुभवों का आध्यात्मिक यथार्थ के सागर थे। वह अध्यात्म के गुह्य सत्य थे जो अपने श्रव्य शब्दों में आविर्भूत हुए थे। उन्होंने मानवता को कर्म-अकर्म की शिक्षा दी। उनकी यशोगाथा त्रैलोक्य में देदिप्यमान है। उन्होंने असंदिग्ध रूप से सिद्ध कर दिया कि अमरत्व वस्तुतः मनुष्य की चेतना वास करनेवाली सामान्य सी वस्तु है। ज्ञानदेव समाधि में लीन हो गये और ब्रह्म से तदाकार हो गये।"

संत ज्ञानेश्वर की समाधि लेने के एक वर्ष बाद निवृत्तिनाथ, सोपान और मुक्ताबाई ने भी समाधि ले ली। इस प्रकार समाजपतियों को दिये गये वचन के अनुसार इन लोगों ने न विवाह किया और न सन्तानोत्पत्ति। संत ज्ञानेश्वर की यशोगाथा सर्वदा के लिए अमर हो गई। आज भी आलंदी में नित्य समाधि पर भक्तों की भीड़ आती है और शुद्ध मन से कामना करनेवालों की कामनाएँ पूरी होती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संत नामदेव

दामाशेट जाति के दर्जी थे। नगर में घूम-घूमकर कपड़े बेचते थे। खाली समय में ग्राहकों के कपड़े सीते थे। एक दिन शाम को अपने लड़के को बुलाकर उन्होंने कहा—"नामा, कल सुबह जल्दी मुझे दूर एक गाँव में कपड़े की फेरी के लिए जाना पड़ेगा। लौटने में रात हो जायगी। पूजा करने में देर हो जायगी। कल मेरे बदले तुम्हें पूजा करनी है। समझे?"

नामा ने कहा—"जी पिताजी। मैं मंदिर में जाकर पूजा कर आऊँगा। माँ से भोग ले लूंगा।"

दामाशेट ने कहा—"सो तो ठीक है। नहाकर कपड़े बदल लेना। साफ-सुथरे कपड़े पहनकर पूजा करना वर्ना विट्ठल (पांडुरंग) नाराज हो जायेंगे।"

नामा ने सिर हिलाकर कहा—"ठीक है।"

दूसरे दिन चलते समय दामाशेट ने पुनः एक बार नामा को समझाने के बाद अपनी पत्नी गोणाई से कहा—"इसे भोग का सामान दे देना।"

नामा बड़े उत्साह के साथ चन्द्रभागा नदी में स्नान कर आया। आज उसे पहले-पहल विट्ठल भगवान की पूजा करने का अवसर मिला था। भोग और फूल लेकर मंदिर में गया। पूजा कैसे की जाती है, इसकी जानकारी नहीं थी। विट्ठल को माला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहनायी। उनके चरणों के निकट फूल रखे। इसके बाद भोग की थाली सामने रखते हुए कहा––"लो, भगवान्! खा लो।"

कुछ देर तक इंतजार करने पर भी जब विट्ठल ने भोग में हाथ नहीं लगाया तब नामा ने कहा––"देर हो रही है भगवान्! जल्द खा लो।"

पत्थर के देवता भला इन बातों का क्या जवाब देते। यह देखकर अभिमान भरे स्वर में नामदेव ने कहा––"पिताजी के हाथों तो रोज खाते हो। आज क्या हो गया? मैं नहा-धोकर साफ कपड़े पहनकर आया हूँ। खा लो वर्ना माँ मुझे मारेगी। जब तक तुम नहीं खाओगे तब तक मैं यहीं बैठा रहूँगा।"

इतना कहने पर भी विट्ठल भगवान् ने जब भोग नहीं लगाया तब नामदेव ने रोते हुए कहा––"नहीं खाओगे तो मैं इस दीवार से टक्कर मारकर अपना सिर फोड़ लूंगा।"

इतना कहकर ज्योंही वह दीवार के पास पहुँचा त्योंही विट्ठल भगवान् प्रकट हुए और सारा नैवेद्य भी उन्होंने प्रेम से खाया। नामदेव खुशी-खुशी घर लौटा। नामा को देखते ही माँ ने पूछा––"क्यों रे, प्रसाद क्या हुआ?"

नामा ने कहा––"आज विट्ठल को तेज भूख लगी थी। सब खा गये।"

गोणाई ने तेज स्वर में पूछा––"विट्ठल खा गये या तू खा गया? झूठ बोलते शर्म नहीं आती? आज तेरा खाना बन्द। आने दे पिताजी को, तब सारा झूठ निकलेगा।"

नामा की सफाई देने पर भी गोणाई को विश्वास नहीं हुआ। शाम को दामाशेट सारी बातें सुनने के बाद बोले––"तू सच कह रहा है या झूठ, इसका पता कल चल जायगा। कल भी तू ही भोग लगायेगा। मैं दूर से देखूंगा।"

दूसरे दिन दामाशेट ने अपनी आँखों से देखा कि प्रस्तर मूर्ति से विट्ठल भगवान् निकले और उन्होंने भोग ग्रहण किया। नामा ज्योंही मंदिर से बाहर निकला त्योंही उसे गोद में उठाकर बारंबार उसे चूमते हुए दामाशेट ने कहा––"नामा, आज तेरी वजह से मैंने भी पांडुरंग के दर्शन किये। मेरा अहोभाग्य है कि तू ने मेरे यहाँ जन्म लिया।"

दामाशेट को याद आया। नामकरण के दिन इसकी जन्मकुंडली बनानेवाले पंडित ने कहा था कि आपका यह लड़का विट्ठल भगवान् का उपासक होगा। नामदेव के नाम से संपूर्ण भारत में प्रसिद्ध होगा।

दामाशेट और उनकी पत्नी दोनों ही विट्ठल भगवान् के उपासक थे। महाराष्ट्र की एक संत महिला जनाबाई सेविका के रूप में इनके घर में रहती थी। जनाबाई के सामने नामदेव का जन्म हुआ था। नामदेव के बारे में जनाबाई के विवरण विश्वसनीय माने जाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस घटना के बाद से नामदेव पर विट्ठल भगवान् का रंग चढ़ गया। जब भी उसे मौका मिलता तब मंदिर में जाकर कीर्तन करने लगता। उसके इस भाव को देखकर दामाशेट चिंतित हो उठे। उन्होंने सोचा कि अगर यही रवैया रहा तो घर की हालत खराब हो जायगी।

आखिर जब उनसे नहीं रहा गया तब एक दिन उन्होंने कहा––"नामा, घर-गृहस्थी की ओर भी मन लगा। अगर यही हालत रही तो आगे तू क्या करेगा ?"

पिता के काफी समझाने पर एक दिन नामा कपड़े लेकर बाजार में बेचने के लिए गये। बाजार में कोई भी सामान बेचने के लिए ग्राहकों की ओर ध्यान देना पड़ता है। उनके हाव-भाव देखने पड़ते हैं। नामा कपड़ों का गट्ठर सामने रखकर विट्ठल के ध्यान में मग्न हो गये। शाम तक इनके साथ आये कई लोगों ने अच्छी कमाई की। लेकिन नामा के कपड़े नहीं बिके। वापसी के समय उन्होंने देखा कि खेत के पास गोल-गोल पत्थर ओस से भीगे पड़े हैं। सर्दी से बचने के लिए नामदेव ने इन पत्थरों को कपड़ों से ढंक दिया।

थोड़ी देर में यह ख्याल आया कि घर वापस जाने पर जब बापू पैसे माँगेंगे तब क्या जवाब दूंगा ? एकाएक उसने एक बड़े पत्थर के पास जाकर कहा––"आठ दिन बाद पुनः बाजार आऊँगा तब मेरे पैसे दे देना।"

घर वापस आते ही दामाशेट ने पूछा––"क्या कपड़े बिक गये ?"

नामा ने कहा––"हाँ, सब बिक गये, पर पैसे आठ दिन बाद जब पुनः बाजार जाऊँगा तब मिलेंगे।"

आठवें दिन नामा बाजार गया और बड़े पत्थर के पास जाकर कहा––"अब कपड़ों के पैसे दे दो वर्ना बापू मुझे बहुत मारेंगे।"

पत्थर पैसे कहाँ से देता ? उसे चुप रहते देख नामदेव ने कहा––"तब तुझे ले चलता हूँ, वहीं चलकर बापू को जवाब देना।"

पंढरपुर वापस आकर नामदेव सीधे विट्ठल के मंदिर में आये। मंदिर की ओर इन्हें जाते देख दामाशेट तमतमाते आ धमके। तभी विट्ठल ने कहा––"तू घबरा मत। मेरे रहते तुझे कोई कष्ट नहीं होगा।"

दामाशेट बौखलाए––"पैसों के बदले तू पत्थर उठा लाया ? क्या इसी तरह धंधा करेगा ? ले जा अपना पत्थर और मेरी रकम ला।"

घर वापस आते ही लोगों ने देखा कि वह पत्थर सोना बन गया है। बिजली की तरह यह समाचार चारों ओर फैल गया। जब यह समाचार खेत के मालिक को ज्ञात हुआ तब उसने आकर कहा––"मेरे खेत से पत्थर उठा लाये हो। मुझे मेरा पत्थर वापस करो।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नामदेव ने कहा—"मुझे मेरे कपड़ों के पैसे दो और अपना पत्थर ले जाओ।"

खेत का मालिक पूरा पैसा चुकाकर सोने का वह पत्थर अपने घर ले गया। घर पर ले जाते ही वह सोने के बदले पुनः निरा पत्थर बन गया।

पुनः वह उस पत्थर को लाकर नामदेव के दरवाजे पर पटक गया। आज भी वह पत्थर नामदेवजी के मंदिर में केशवराज की मूर्ति के पूर्व की ओर रखा है। आज तक उस पत्थर की पूजा स्थानीय लोग करते आ रहे हैं।

नामा अर्थात् नामदेव के जन्म के बारे में कई कहानियाँ प्रचलित हैं। एक कहानी में कहा गया है कि नामदेव का जन्म माँ के पेट से नहीं हुआ है। गोणाई और दामाशेट को भागीरथी में स्नान करते समय एक सीप मिली थी जिसमें से नामदेव प्रकट हुए थे। दूसरी कहानी में कहा गया है कि नदी में स्नान करते समय गोणाई के पेट से तुलसी की एक पत्ती आकर टकराई, उसके कारण गर्भ रह गया। लगता है संसार के प्रसिद्ध संतों के चमत्कारपूर्ण जीवन की घटनाओं से प्रभावित होकर किसी भक्त ने इस कथा को जन्म दिया था।

नामदेव के जन्म के बारे में उनकी सेविका जनाबाई ने अपने एक अभंग में लिखा है—"दामा की पत्नी गोणाई ने पंढरपुर आकर देवता से मनौती मानी कि मुझे एक पुत्र दो। इस मन्नत के कारण नामदेव का जन्म हुआ।" यही विश्वस्त कहानी है।

दामाशेट पहले परभणी जिले के एक गाँव में रहते थे। बाद में कामकाज की कमी के कारण वे पंढरपुर आकर बस गये। यहीं २६ अक्टूबर, सन् १२७० के दिन नामदेव का आविर्भाव हुआ। बचपन में उनका नाम नामा था जो आगे चलकर नामदेव हो गया।

दामाशेट जाति के दर्जी थे, जिन्हें समाज में अछूत समझा जाता था। इनके यहाँ ग्राहकों के कपड़े सिये जाते थे। स्वयं नामदेव ने अपने एक अभंग में इस बात की चर्चा की है। उन्होंने लिखा है—"शिपी (दर्जी) कुल में मेरा जन्म हुआ था। मैं दिन-रात सीता रहता हूँ।"

आगे एक अभंग में अपनी मनःस्थिति की चर्चा करते हुए नामदेव लिखते हैं—"मेरा मन इस (दर्जीवाले) काम में नहीं लग रहा है। सूई, डोरा, कैंची आदि सभी चीजों में मुझे शिव के दर्शन होते हैं। वास्तव में शिव ही मेरे विठोबा हैं।"

लड़के की इस स्थिति को देखकर गोणाई भी चिन्तित हो उठी। पति तो पहले से ही असंतुष्ट थे। एक दिन उसने दामाशेट से कहा—"मेरा विचार है कि नामा का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विवाह कर दो। घर में जब बहू आयेगी तब यह सब बन्द हो जायगा। जब तक घर गृहस्थी की जिम्मेदारी नहीं समझेगा तब तक ऐसा ही करता रहेगा।"

दामाशेट अपने पुत्र में तेजी से होनेवाले परिवर्तन को देखकर परेशान थे। गोणाई के सुझाव पर उन्होंने कहा--"बात तो ठीक कह रही हो, पर कहीं विवाह के बाद भी यही स्थिति रही तब क्या होगा ?"

गोणाई ने कहा--"बहू आकर सब ठीक कर लेगी। तुम अपने को क्यों नहीं देखते। पहले क्या थे और विवाह के बाद क्या से क्या बन गये। बैल के कंधे पर जब तक जुआ नहीं रखा जाता तब तक उसे अपने काम का मान नहीं होता।"

इस निश्चय के बाद गोविन्द शेट्टी की पुत्री राजाई से नामदेव का विवाह कर दिया गया। उन दिनों बाल विवाह की प्रथा थी। वर-वधू अभी बालिग नहीं हुए थे। दामाशेट का ख्याल था कि बहू के आने पर नामा उसके प्रेम में बँध जायगा। गृहस्थी के बंधन में फँस जाने पर अपनी जिम्मेदारी अनुभव करेगा। लेकिन उनका यह विचार केवल स्वप्न बनकर रह गया।

नामदेव पहले की तरह मंदिर में जाकर भजन-कीर्तन में समय व्यतीत करते रहे। भाव विभोर हो वे अपने विठोवा की भक्ति में दिन दूना रात चौगुना डूबते गये। डाँट-फटकार का उन पर कोई असर नहीं हुआ। आखिर जब दामाशेट सभी ओर से हार गये तब एक दिन अपनी पत्नी से बोले--"तुम्हारे कहने पर लड़के की शादी कर दी। अब बहू और उसके बच्चे का भरण-पोषण मुझे करना पड़ रहा है। आखिर इस तरह पागलपन करता रहेगा तो गृहस्थी कैसे चलेगी ?"

सामने राजाई बैठी थी। उसकी ओर देखते हुए दामाशेट ने कहा--"तुम भी उसे समझाओ बहू। यदि कल को मैं मर गया तो तुम लोग क्या खाओगे, क्या पहनोगे ? अब मुझसे पहले जैसी मेहनत नहीं होती।"

गोणाई और राजाई मिलकर नामा को समझाने लगीं। जिस प्रकार चिकने घड़े पर पानी का कोई असर नहीं होता, उसी प्रकार नामदेव पर इनकी बातों का कोई प्रभाव नहीं होता। दो-एक दिन काम करता और फिर विठोवा की सेवा में लग जाता।

अपने अभंग (१६८५) में कहते हैं--"जो घट फूट गया है, वह अब क्या टूटेगा। यह संसार भी ऐसा ही है। संसार को भी इसी रूप में लीजिए जो बेकार फैला हुआ है।"

धीरे-धीरे समय गुजरता गया। नामदेव नारा, विठा, गोंदा, महादा, चार पुत्रों और लिंबाई नामक पुत्री के पिता बने। इन पुत्रों के विवाह भी हो गये। परिवार बड़ा हो गया, लेकिन नामदेव के विठोवा-भक्ति में कमी नहीं आयी। फिर वे माँ और परिवार के लोगों से तंग आकर वे मंदिर में जा रहने लगे। इस प्रकार उनका घर से नाता टूट गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सम्पूर्ण महाराष्ट्र में पंढरपुर का महत्व सर्वाधिक है। उसे तीर्थराज की संज्ञा दी जाती है। आज भी यहाँ आषाढ़ शुक्ल तथा कार्तिक शुक्ल एकादशी को (यानी हरिशयन और उत्थान एकादशियों को) भक्तों की भीड़ एकत्रित होती है। दिन-रात भजन और कीर्तन होता है। पंढरपुर के बारे में यह माना जाता है कि यह क्षेत्र भगवान् विष्णु के चक्र पर स्थित है।

ठीक इन्हीं दिनों संत ज्ञानेश्वर की ख्याति संपूर्ण महाराष्ट्र में फैल रही थी। नामदेव ने सोचा——ऐसे संत का दर्शन करना चाहिए। शायद ज्ञानेश्वरजी के पास जाने से कोई मार्ग मिल जाय।

संत ज्ञानेश्वर को अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति के द्वारा भान हुआ कि विट्ठल भगवान् के अनन्य भक्त नामदेव मेरे दर्शन के लिए आ रहे हैं। ज्ञानेश्वर ने इस बात की सूचना अपने भाई निवृत्तिनाथ को दी।

निवृत्तिनाथ ने कहा——"पंढरपुर के इस भक्त का स्वागत-सम्मान करने के लिए हम तैयार हैं। विट्ठल के भक्त हमारे आराध्य हैं।"

नामदेव को आया देखकर निवृत्तिनाथ ने उन्हें प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करने के बाद उनके चरणों की वंदना करते हुए कहा——"आज पंढरपुर का प्रेम हमारे यहाँ आया है।"

निवृत्तिनाथ के विनयपूर्ण व्यवहार को देखकर नामदेव के मन में अपनी भक्ति का अभिमान जाग्रत हो उठा। उन्होंने सोचा, मेरी साधना, भक्ति, ज्ञान आदि इनसे श्रेष्ठ है। मैं इनसे महान् हूँ। इनका प्रणाम लेने का अधिकार मुझे है। मैं वयोजेष्ठ हूँ। फलस्वरूप उन्होंने निवृत्तिनाथ को प्रणाम नहीं किया।

निवृत्तिनाथ के बाद ज्ञानदेव उठे और उन्होंने प्रणाम करने के बाद चरण-स्पर्श किया। इस समय भी नामदेव ने यही सोचा कि विट्ठल के भक्त को प्रणाम करना चाहिए। मैं तो सर्वदा विट्ठल के दरबार में रहता हूँ। मैं इनसे उच्चकोटि का संत हूँ।

संत ज्ञानदेव के बाद सोपान आये। अपने भाइयों की तरह इन्हें प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा——"आज हम अनाथों के माँ-बाप मिले।"

और अब मुक्ताबाई की पारी आयी। वह बड़ी मुँहफट और कड़वी बात कहनेवाली लड़की थी। उसने प्रणाम करने के बदले कहा——"जो व्यक्ति दिन-रात भगवान् के पास भजन करता है, उसका अहंकार अभी तक क्यों नहीं गया? मैं ऐसे व्यक्ति को प्रणाम करने को कौन कहे, इनके पास भी नहीं जा सकती।"

मुक्ताबाई की बातें सुनकर सभी भाई चौंक उठे। उसे हर तरह से समझाने का प्रयत्न किया गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निवृत्तिनाथ ने कहा—"नामदेव ने भक्ति के माध्यम से भगवान् के दर्शन किये हैं। संसार में भक्ति से बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है।"

मुक्ताबाई ने कहा—"हो सकता है कि इनमें भक्ति हो, पर भीतर से ये कोरे हैं। जिस व्यक्ति को यह नहीं मालूम कि दूसरे संतों से मिलने पर किस तरह का व्यवहार करना चाहिए, वह अगर दिन-रात भगवान् के पास रहता है तो क्या हुआ? पारस के ऊपर अगर खपरैल का ढक्कन रहे तो इससे बावन तोले की माप में कमी नहीं होगी। जो व्यक्ति अमृत छोड़कर काँजी का पान करे उसे क्या कहा जाय? गधे को गंगा-स्नान कराने से कोई लाभ होगा? रंगीन गुड़िया देखने में अच्छी लगती है, पर उसके जेवर नकली होते हैं। इनका संतपन इसी प्रकार का है। भले ही ये ऊँचे दर्जे के संत हैं, पर इनमें ज्ञान का अभाव है।"

बीच ही में टोकते हुए निवृत्तिनाथ ने कहा—"तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए। इतने बड़े संत हमारे दरवाजे पर आये हैं, यह हमारा सौभाग्य है। हमें इनका सम्मान करना चाहिए। कम से कम इन्हें 'तू' मत कह।"

लेकिन मुक्ताबाई अपनी जिद्द पर अड़ी रही। बात बढ़ती गयी। भाइयों ने प्रेम से काफी समझाया, पर मुक्ताबाई टस से मस न हुई। अन्त में इस बात पर झगड़ा होने लगा कि क्या नामदेव की भक्ति हम लोगों से बढ़कर है? इस बात की जाँच करायी जाय।

अब प्रश्न उठा कि यहाँ ऐसा कौन व्यक्ति है जो इस समस्या का समाधान कर सके। भक्ति का मापदंड करना असाधारण बात है। उन दिनों वार्शी, पंढरपुर, मंगलवेढ़े और आवढया नागनाथ में अनेक संत रहते थे। इन सभी संतों में गोरोबा उच्चकोटि के संत थे। सभी लोगों ने एक मत से यह निर्णय किया कि संत गोरोबा को बुलाकर उनसे जाँच करायी जाय।

गोरोबा कुम्हार के पास अनुभव की एक लकड़ी थी। इसके जरिये वे इस बात का पता लगाते थे कि व्यक्ति के ज्ञान का मटका पक्का है या कच्चा? मुक्ताबाई उन्हें बुलाकर अपने साथ ले आयी।

संत गोरोबा आये। सभी लोगों को एक पंक्ति में बैठने को कहा। इसके बाद हाथ की लकड़ी से सबसे पहले निवृत्तिनाथ के सिर पर आघात किया। कई बार धीरे से फिर एक बार जोर से। इसके बाद क्रमशः संत ज्ञानेश्वर, सोपान और मुक्ताबाई के सिर पर चोट की गयी। अन्त में नामदेव को मारते ही वे उस चोट को बर्दाश्त नहीं कर सके। चीखने के बाद अपना सिर सहलाने लगे।

यह देखकर संत गोरोबा ने कहा—"यह मटका कच्चा है (ज्ञान का अभाव है)।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गोरोबा की बातें सुनकर मुक्ताबाई विजय की प्रसन्नता में हँस पड़ी। नामदेव इस अपमान से बड़े दुःखी हुए। आलंदी में बिना किसी से मिले सीधे पंढरपुर चले आये और विट्ठल के पास जाकर उनके गले से लिपटकर रोने लगे। उन्होंने निवृत्तिनाथ के भाइयों और बहन को खल, कुटिल आदि कहा। काफी देर तक वे अपने अभिमान भरे क्रोध में भला-बुरा कहते रहे।

कहा जाता है कि नामदेव की पीड़ा देखकर स्वयं पांडुरंग भगवान् ने प्रकट होकर कहा—"वत्स, तेरी भक्ति की तुलना नहीं है। तू मेरा प्रिय भक्त है। लेकिन साधना के लिए गुरु द्वारा बताये मार्ग से मोक्ष प्राप्त होता है। बिना गुरु के सफलता नहीं मिलती। तेरे गुरु दारुका वन में स्थित नागनाथ मंदिर में तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके पास चला जा। वे तुझे सही मार्ग दिखायेंगे।"

इस प्रवचन को सुनते ही नामदेव का चित्त शांत हुआ। उन्होंने महसूस किया कि बिना सद्गुरु के साधना सफल नहीं होगी। लेकिन उन्हें यहाँ से जाने में कष्ट हो रहा था। वे अपने विट्ठल को छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहते थे।

पांडुरंग ने इस मनोभाव को समझते ही कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। तुम जहाँ कहीं रहोगे, वही पंढरपुर बन जायगा और विट्ठल सदा सहायक बने रहेंगे।"

दूसरे दिन नामदेव आवंढया नागनाथ की ओर रवाना हो गये। कहीं कोई दिखाई नहीं दिया। मंदिर के भीतर प्रवेश करने पर उन्होंने देखा कि एक आदमी शिवलिंग पर पैर रखकर आराम से सोया हुआ है। उसके इस आचरण को देखकर नामदेव क्रुद्ध हो उठे।

पास जाकर नामदेव ने कहा—"अंधे हो क्या? शिवलिंग पर पैर रखकर सो रहे हो?"

उस व्यक्ति ने कहा—"अरे भाई, नाराज क्यों होते हो? जहाँ ईश्वर न हो, वहाँ मेरे पैर उठाकर रख दो। मुझसे हिला तक नहीं जा रहा है।"

इतना सुनते ही क्रोध में सोये हुए व्यक्ति के पैर पकड़कर उन्होंने उठाये और एक ओर पटक दिये। नामदेव ने देखा कि एक अन्य शिवलिंग उस व्यक्ति के पैर तले आ गया। इस प्रकार नामदेव ने जितनी बार प्रयास किया, हर बार यही दृश्य उनकी नजरों में दिखाई देता रहा।

अब नामदेव समझ गये कि यही व्यक्ति मेरा वास्तविक गुरु है जिसका निर्देश भगवान् पांडुरंग ने दिया था। आप अपनी शक्ति के द्वारा मेरे भ्रम को दूर कर रहे हैं। तुरंत उनके चरणों पर अपना मस्तक रखते हुए नामदेव ने कहा—"गुरुदेव, अपराध क्षमा करें। मैं आपको पहचान नहीं सका। भ्रमवश अपराध हो गया। मुझे ज्ञान दीजिए, परमार्थ दीजिए, शक्ति दीजिए।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विसोबा खेचर ने आनन्दमयी मुस्कान बिखेरते हुए कहा––"मैं जानता हूँ। भगवत् कृपा से तुम्हारा आगमन हुआ है।"

इतना कहकर विसोबा खेचर ने नामदेव के सिर पर हाथ रखा। नामदेव को लगा जैसे विद्युत गति से कोई शक्ति मस्तक से सारे शरीर में दौड़ गयी। क्षण भर के लिए उनका रूप कुछ और हो गया। बाद में विसोबा ने कहा––"जाओ, स्नान कर आओ। इसके बाद दीक्षा दूंगा।"

अब तक नामदेव विठोवा के अंधभक्त थे। दीक्षा के बाद उनके ज्ञान का अन्तरपट खुल गया। नामदेव के गुरु विसोबा खेचर संत ज्ञानेश्वर की बहन मुक्ताबाई के शिष्य थे।[1]

पंढरपुर वापस आकर नामदेव अपने विट्ठल के प्रति पूर्ण समर्पित हो गये। उन्हें अब यह प्रतीत होने लगा कि अब तक वे अंधेरे में थे। स्वयं ज्ञानदेव ने नामदेव के बारे में कहा––"पंढरी का तू प्रेम-भंडारी है, भक्त भागवत बहुत से सुने। बहुत से हो गये, बहुत से आगे होंगे, पर नामदेव तो केवल प्रेम का पुतला है, अन्तरंग का भक्त है।"

अब नामदेव इतने विट्ठलमय हो गये थे कि उन्हें अपने घर की चिन्ता नहीं सताती थी। एक प्रकार से वे सांसारिक मोह-माया से दूर हो गये थे। इस बारे में एक जनश्रुति है कि राजाई की एक सहेली कमला थी। इसके पति का नाम परिसा भागवत था। इन्होंने रुक्मिणीजी की आराधना कर पारस पत्थर माँग लिया था। इस पत्थर के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता था।

कमला पारसमणि के माध्यम से अपनी गरीबी दूर कर ठाठ से रहती थी। इधर राजाई दाने-दाने को मोहताज थी। बच्चे भूख से रोते तड़पते रहते थे। नामदेव का ध्यान इस ओर नहीं जाता था। सारी बातें सुनने के बाद कमला ने कहा––"तू इस पारस पत्थर को ले जा। थोड़े सा लोहे का सोना बना ले और उसे बेचकर अपनी गृहस्थी ठीक कर ले।"

राजाई पारसमणि लेकर घर वापस आयी और थोड़ा-सा सोना बनाया बाजार में जाकर बेचा और खाने-पीने का सामान खरीद लायी। दोपहर को जब नामदेव आये तब सारी बातें सुनकर उन्होंने पारसमणि को माँग लिया और उसे ले जाकर नदी में फेंक दिया।

इधर पारसमणि को अपनी जगह न देख परिसा भागवत ने पूछताछ शुरू की। भय के कारण कमला ने सारी कहानी सुना दी। पति के अज्ञानुसार वह तुरत राजाई के घर गयी। राजाई उसे लेकर नदी किनारे उस जगह पहुँची जहाँ नामदेव बैठे करताल बजाते हुए विट्ठल का नाम गा रहे थे।

१. विशेष जानकारी के लिए 'संत ज्ञानेश्वर' का विवरण देखें।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पारसमणि के बारे में प्रश्न करने पर उन्होंने कहा––"उसे तो मैंने नदी में फेंक दिया। कहो तो निकाल दूँ ?"

इतना कहकर नामदेव ने नदी में गोता लगाया और अपनी अंजली में अनेक कंकड़ भर लाये। बोले––"सभी कंकड़ पारसमणि हैं।"

वहाँ खड़े लोग हँसने लगे। दो-एक ने उन कंकड़ों का प्रयोग किया। उससे स्पर्श कराते ही लोहा सोना हो गया। यह दृश्य देखकर परिसा भागवत उनके चरणों पर गिर पड़ा। आगे चलकर यही नामदेव का प्रमुख शिष्य बना।

घर की स्थिति सही नहीं चल रही थी। बच्चे परेशान रहने लगे। पति पर अपनी बातों का असर न होते देख एक दिन राजाई गुस्से से बाहर निकल पड़ी। रास्ते में उसे एक मरा हुआ साँप मिला। उसने सुन रखा था कि साँप में जहर होता है। उसे उठाकर घर ले आयी और हांड़ी में उबालने लगी ताकि सभी लोग उस पानी को पीकर मर जायँ। इस तरह गरीबी से मुक्ति मिल जाए।

थोड़ी देर बाद ढक्कन खोलने पर उसने देखा कि हाँड़ी में सोने का साँप था। इतने में नामदेवजी आये और उन्होंने सारा सोना गरीबों को बाँट दिया। बोले–– "मेरे गुरु का यही आदेश है।"

नामदेव ने अपने दादा गुरु के बारे में लिखा है––'मेरे ज्ञानराज योगियों की माता हैं जिन्होंने निगम-वल्ली प्रकट की है। अध्यात्म विद्या तथा चैतन्य का दीप जलाया है। उन्होंने छप्पन भाषाओं का गौरव बढ़ाया है।'

गुरु मंत्र लेने के बाद अपने आराध्य विट्ठल से विनय पूर्वक नामदेव कहते हैं–– "वाल्मीकि ने आपको लेकर ग्रंथ लिखा है। मुझे इस बात का दुःख है कि मेरा जीवन व्यर्थ गया। हे विठोबा, अगर मैं तुम्हारा सच्चा भक्त हूँ तो तुम्हारी प्रशंसा में सौ करोड़ 'अभंग' लिखूंगा। वाल्मीकि के युग में मनुष्य की आयु लम्बी होती थी। आजकल बहुत कम हो गयी है। अगर मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सका तो तेरे आगे अपना मस्तक चढ़ा दूँगा।"

नामदेव के अनेक अभंग है जो उनकी भक्ति, श्रद्धा, प्रेम तथा जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित हैं। नामदेव की एक दासी जनाबाई थी। वह स्वयं भी नामदेव के साथ रहने के कारण विट्ठल-भक्त बन गयी थी। उसने अपने एक अभंग में लिखा है–– "ज्ञानदेव के शब्द सच्चिदानन्द बाबा ने लिखे हैं, निवृत्तिनाथ के सोपान देव ने, मुक्ताबाई के ज्ञानदेव ने, च्यांगदेव के कासार ने, चोखामेल के अनन्त भट ने लिखे हैं। लेकिन नामदेव के अभंग स्वयं भगवान् पांडुरंग ने लिखे हैं।"

वस्तुतः नामदेव के सभी अभंग स्वयं नामदेव ने लिखे हैं। जनाबाई के लिए नामदेव के अभंग इतने प्रिय थे कि वह इन्हें पांडुरंग के लिखे हुए ही समझती थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहसा विसोबा खेचर को ख्याल आया कि मेरा शिष्य अपनी साधना में कहाँ तक प्रगति कर सका है, इसकी जाँच करनी चाहिए। सहसा एक दिन नामदेव क्या देखते हैं कि उनके घर के एक हिस्से में आग लगी हुई है। यह देखकर नामदेव ने प्रसन्न भाव से कहा—"वाह मेरे विट्ठल ! आप आये तो पीछे से। लो, मेरा सर्वस्व ले लो ताकि मैं इनकी माया से दूर हो जाऊँ। सब तेरा ही है।"

यह बातें कहते हुए वे घर की सामग्री एक-एक करके आग में फेंकने लगे। थोड़ी ही देर में आग बुझ गयी। वहाँ स्वयं विट्ठल प्रकट हो गये। अपने भक्त की चीजों को उठाकर एक ओर रखने लगे।

इसी प्रकार एक बार आप किसी जंगल में भोजन बना रहे थे। भोजन बनाने के बाद जब हाथ-मुँह धोकर जीवने बैठे तो देखा—एक कुत्ता रोटी लेकर भाग रहा है। तुरत नामदेव उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े।

—ठहर जाओ मेरे विट्ठल। यह रोटी सूखी है। जरा घी लगा दूँ वर्ना खाने में कष्ट होगा।

एकाएक वह कुत्ता गायब हो गया और वहाँ संत नामदेव के आराध्य प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—"तुम मेरी सेवा में कितने पक्के हो गये हो, इसकी परीक्षा विसोबा ले रहा था। जाओ, अब कोई भय नहीं है।"

नामदेव भावविभोर होकर कहने लगे—"कमर पर हाथ रखकर खड़े हो, घर लेनेवाले ? मेरा हिसाब कर दो। हे केशव, मैंने चौरासी लाख योनियों में तेरी सेवा की है। अब मेरा कर्जा चुकाओ वर्ना मैं तेरे सेवकों को पकड़ूँगा। अगर आप मुझे तंग करोगे तो मैं आपके चरणों से लिपट जाऊँगा।"

ठीक इन्हीं दिनों संत ज्ञानेश्वर पंढरपुर आये। यहाँ उनके आने का उद्देश्य था—नामदेव को अपने साथ लेकर तीर्थयात्रा के लिए चलने को कहना। इनके साथ और भी संत जा रहे थे।

नामदेव ने कहा—"मैं अपने विट्ठल को छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। मेरा तीर्थ, मेरे आराध्य सब कुछ यही हैं। इन सबको छोड़कर कैसे जाऊँ ?"

नामदेव का भगवद्-प्रेम देखकर संत ज्ञानेश्वर को कहना पड़ा—"हरिदासों में तुम बिलकुल निराले हो, प्रेम के पुतले हो। वास्तव में तुम विट्ठल के पुत्र हो। हे नामदेव, तुम हम सब पर कृपा करो।"

नामदेव विट्ठल की मूर्ति से जा लिपटे। सहसा उन्हें लगा जैसे उनसे विट्ठल कह रहे हों—"योगिराज संत ज्ञानेश्वर के साथ तीर्थयात्रा कर आओ। यह अवसर मत छोड़ो। तुम मेरे प्रिय भक्त हो।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपने विट्ठल से यह आदेश पाते ही संत नामदेव ने कहा—"हे प्रभो, मैं तैयार हूँ। पांडुरंग ने मुझे अनुमति दे दी है।"

योगिराज संत ज्ञानेश्वर के साथ नामदेव सबसे पहले कृष्ण की पुरी द्वारकाधाम गये। यहाँ से प्रभास तीर्थ, मारवाड़ होते हुए बीकानेर जिले के कोलादजी गाँव में आये।

यहाँ आने पर संत ज्ञानेश्वर को प्यास लगी। कुएँ में पानी कम था। संत ज्ञानेश्वर कुएँ के भीतर चले गये। वहाँ स्वयं पीने के बाद अन्य लोगों के लिए पानी लेते आये।

जब संत ज्ञानेश्वर ने नामदेव से पानी पीने का आग्रह किया तब उन्होंने कहा—"मुझे प्यास लगी है और मेरे विठोबा को इसकी चिन्ता नहीं है। जब तक वे पानी नहीं देंगे तब तक मैं पानी नहीं पिऊँगा। नीचे उतरकर पीने भी नहीं जाऊँगा।"

नामदेव के इस हठ को देखकर सभी संत अवाक् रह गये। एकाएक लोगों ने देखा कि कुँआ पानी से लबालब भर ही नहीं गया; बल्कि एक ओर से बह रहा है।

नामदेव की इस साधना को देखकर संत-मंडली विस्मित हो उठी। ज्ञानदेव ने कहा—"आपकी भक्ति और साधना को देखकर हम चकित हैं। भक्तों का ख्याल भगवान् कितना रखते हैं, इसके ज्वलंत उदाहरण आप हैं। हम सब आपके सामने नतमस्तक हैं।"

जिस कुएँ में यह चमत्कार हुआ था, आज भी वहाँ है। स्थानीय लोग इस कुएँ की चर्चा करते रहते हैं।

यात्रा करते हुए नामदेव जहाँ भी जाते वहीं नाम-कीर्तन करते थे। योगिराज संत ज्ञानेश्वर के अलावा अन्य अनेक संत आपके साथ थे। कीर्तन करते-करते नामदेव को समाधि हो जाती थी।

यात्रा करते हुए ये लोग काशी आये। उन दिनों यहाँ पंडित मुद्रलाचार्यजी यज्ञ कर रहे थे। ठीक इन्हीं दिनों यह सवाल उठा कि अग्रपूजा का सम्मान किसे दिया जाय। इस यज्ञ में भाग लेने के लिए अनेक वेदपाठी, याज्ञिक ब्राह्मण भारत के विभिन्न शहरों से आये हुए थे। सभी यह सम्मान स्वयं पाना चाहते थे। अन्त में यह निश्चय किया गया एक हस्तिनी की पूजा करके उसे माला दे दी जाय। वह जिस व्यक्ति के गले में डाल देगी, उसी को अग्रपूजा का सम्मान दिया जायगा।

हथिनी की सूंड़ में माला पहनाकर मुद्रलाचार्य आदि उसके पीछे-पीछे चल पड़े। कई लोग हाथी के सामने आकर खड़े हुए ताकि वह उन्हें माला पहना दे, पर किसी को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। नगर बाहर आते ही एक किशोर संत के गले में हाथी ने माला डाल दी। वह संत थे—निवृत्तिनाथ।

लोगों ने मुद्रलाचार्यजी से कहा कि हथिनी आखिर जानवर है। एक अनजान व्यक्ति के गले में माला पहना देने से वह अग्रपूजा का अधिकारी नहीं हो सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्राह्मण के इस आक्रोश को देखकर नामदेव ने पूछा––"आप कैसा अधिकारी पुरुष चाहते हैं ?"

एक ब्राह्मण ने कहा––"हम ऐसे अधिकारी पुरुष को चाहते हैं जो यज्ञ का प्रसाद अपने हाथ लेकर स्वयं भगवान् विश्वनाथ को खिला सके ।"

नामदेव ने कहा––"आपकी शुभकामना से ऐसा ही होगा ।"

निवृत्तिनाथ ने यज्ञ का प्रसाद अपने हाथ में लिया और लोगों के साथ-साथ विश्वनाथ मंदिर आये । मंदिर में आकर निवृत्तिनाथ ने कहा––"प्रभो, मैं तो तीर्थयात्रा करने आया था । आपकी प्रेरणा से ही हथिनी ने मेरे गले में माला डाल दी । अब आप मेरी रक्षा करें ।"

इतना कहना था कि अचानक भगवान् शंकर प्रकट हुए । उन्होंने निवृत्तिनाथ से प्रसाद ग्रहण किया । इस प्रकार यज्ञ-कार्य सम्पन्न हुआ ।

तीर्थयात्रा समाप्त करने के बाद एक बार पुनः उस मंदिर में आये जहाँ उन्हें अपने गुरु विसोबा खेचर से मंत्र प्राप्त हुआ था । मुख्य दरवाजे के सामनेवाले प्रांगण में संतों के साथ कीर्तन करने लगे ।

नित्य प्रातःकाल स्थानीय ब्राह्मण भक्त दर्शन करने आते हैं । संतों की भीड़ के कारण उन्हें मंदिर के भीतर जाने में असुविधा होने लगी । यह देखकर पंडों ने कहा–– "यह क्या तमाशा है । रास्ता घेरकर आप लोग कीर्तन कर रहे हैं ।"

पंडों में किसी को यह मालूम था कि नामदेव दर्जी (अछूत) हैं । उसने जाति का भी ताना दिया । उसके इस आचरण से नामदेव मन ही मन खिन्न होकर कहने लगे–– "गंदी जमीन पर तुलसी का पौधा जन्म लेता है, पर उसे अपवित्र नहीं माना जाता । कौए की विष्टा से पीपल का वृक्ष जन्म लेता है, इसे भी अमंगल नहीं समझा जाता । अगर दासी-पुत्र को राजगद्दी मिलती है तब उसे दासी-पुत्र नहीं कहा जाता । मैं दर्जी जाति का जरूर हूँ, पर मुझे जाति का ताना न मारिये ।"

जाति का दर्जी है जानकर अन्य सभी ब्राह्मणों ने इन्हें खदेड़कर पीछे भगा दिया । लाचारी में सभी लोग मंदिर के पीछे आकर कीर्तन करने लगे । थोड़ी ही देर में भाव विभोर नामदेव कहने लगे––"हे विट्ठल, क्यों तुमने मुझसे रूठकर मुँह मोड़ लिया है । मेरे सामने आओ, मुझे दर्शन दो । मेरी ओर पीठ करके मत रहो । इन संतों पर कृपा करो जगत्-पिता ।"

उपस्थित लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि मंदिर का जो दरवाजा पूर्व की ओर था, धीरे-धीरे घूमकर पश्चिम की ओर हो गया । आज भी आवढंया नागनाथ का मंदिर पश्चिमाभिमुख है ।

नामदेव चमत्कार दिखाने के पक्षपाती नहीं थे । उनका कहना था कि इससे साधकों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की शक्ति क्षय हो जाती है। विट्ठल की कृपा से जो अपने आप हो जाता है, वही ठीक है।

महाराष्ट्र में 'भागवत-धर्म' को 'वारकरी-पंथ' कहा जाता है। इस पंथ की नींव संत ज्ञानेश्वर ने रखी। कुछ लोगों का विश्वास है कि इस धर्म के संस्थापक संत नामदेव थे। लेकिन अब यह धारणा गलत प्रमाणित हो चुकी है। संत तुकाराम की शिष्या बहिणी देवी ने अपने एक अभंग में लिखा है कि 'भागवत-धर्म' की नींव संत ज्ञानेश्वर ने रखी और इसे पल्लवित किया—संत नामदेव ने।

हरिशयन तथा देवात्थान एकादशी के दिन इस धर्म के अनुयायी चारों ओर से आते हैं और पूजा-कीर्तन करते हैं।

तीर्थयात्रा समाप्त करने के बाद नामदेव पुनः पंढरपुर में अपने विट्ठल के पास आ गये। इसी प्रकार वे अपने विट्ठल के सामने समर्पित-जीवन व्यतीत करने लगे।

सहसा एक समाचार ने सम्पूर्ण महाराष्ट्र को उद्वेलित किया। संत ज्ञानेश्वर ने घोषणा की है कि वे अब समाधि लेंगे। बाल-योगी की समाधि देखने के लिए दूर-दूर से संत आने लगे। संत ज्ञानेश्वर द्वारा समाधि लेने की घोषणा ने नामदेव के हृदय को मथ डाला। विगत कई महीने ज्ञानदेव के सम्पर्क में रहने के कारण उन्हें परम योगी समझते रहे। उन्होंने अपने अभंग में इस घटना का अद्भुत वर्णन किया है।

श्री माधव गोपाल देशमुख ने लिखा है—"इस प्रसंग का नामदेव ने जो वर्णन किया है, वह 'समाधि के अभंग' के नाम से मराठी साहित्य में अजरामर है। ज्ञानेश्वर की समाधि के समय का सूक्ष्म विवरण इन अभंगों में अत्यन्त प्रभावपूर्ण ढंग से वर्णित है। उनमें करुण-रस ओतप्रोत है। नामा कहता है—'अब दिनकर लुप्त हुआ। बाप ज्ञानेश्वर समाधिस्थ हुआ।' इस घटना का नामदेव पर कल्पनातीत प्रभाव पड़ा। चींटियों के बिल में आग लग जाने पर, नदी की मछलियों को मादक द्रव्य खिलाने पर उनकी जैसी तिलमिलाहट होती है, वैसा सारा जनमन उद्वेलित हुआ।"

इस घटना के कारण नामदेव अत्यन्त मर्माहत हो उठे। एक समय था जब वे अपने विट्ठल को छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहते थे। विट्ठल से आज्ञा मिलने पर ही वे तीर्थयात्रा करने गये और अब संत ज्ञानेश्वर से बिछुड़ने के कारण उनका मन इतना उचाट हो गया कि महाराष्ट्र को हमेशा के लिए त्यागकर उत्तर की ओर चल पड़े।

राजस्थान पारकर वे पंजाब चले आये। सबसे पहले अमृतसर जिले के 'भूतपिंड' गाँव में आये। यहाँ बहोरदास नामक एक व्यक्ति उनका शिष्य बना। बाद में भट्टीवाल गये। यहाँ जिस तालाब के किनारे नामदेव ठहरे उसे आज भी 'नामियाना तालाब' कहते हैं। यहाँ भी इनके कई शिष्य बने। लोगों की भीड़भाड़ से तंग आकर यहाँ से जंगल के भीतर चले गये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन दिनों वहाँ कोई बस्ती नहीं थी। दिन-रात जंगली जानवर चलते-फिरते नजर आते थे। यहाँ एकांत में वे अभंग लिखते रहे। आश्चर्य की बात यह है कि नामदेव के अभंग केवल मराठी में ही नहीं, बल्कि पाँच भाषाओं में है। मराठी, कन्नड़ी, कोंकणी, मुसलमानी (उर्दू नहीं) और गुजरिणी भाषा में उन्होंने श्रीकृष्णलीला के चीरहरण प्रसंग का वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में महीपति ने लिखा है—"जिस जिस देश में तीर्थ करने गये, वहाँ वैसी करने लगे कविता।"

सतलुज नदी के पार धरोचा नामक नगर था। यहाँ घुमान जाति के जाट रहते थे। बाद में नामदेव यहाँ आकर रहने लगे। आज जहाँ घुमान गाँव बसा हुआ है, पहले वहाँ भयानक जंगल था। यहाँ संत नामदेव के नाम पर स्मृति मंदिर बना हुआ है।

नामदेव की उम्र जब ८० वर्ष हो गयी तब उनकी आत्मा ने समाधि लेने की आज्ञा दी। वे पंजाब में समाधि लेना नहीं चाहते थे। फलतः वे पंढरपुर वापस आ गये और अपने विट्ठल से कहा—"प्रभो, अब मुझे अपने चरणों में स्थान देने की कृपा करें। मेरी आयु समाप्त हो रही है। वायदे के अनुसार अभंग लिखने का कार्य मैंने पूर्ण कर लिया है।"

१३५० ई० में उन्होंने पंढरपुर के देवालय के सामने प्राण तज दिये। कुछ लोग परभणी तथा घुमान स्थित समाधि को नामदेव की समाधि कहते हैं, पर अब यह धारणा निर्मूल सिद्ध हो चुकी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संत रविदास

नित्य की भाँति स्वामी रामानन्द ब्राह्म मुहूर्त में गंगा स्नान करने के बाद आश्रम में आये। उनकी कुटिया में पूजन-सामग्री पहले से ही शिष्यों ने ठीक करके रख दी थी। पूजन के बाद जब स्वामी रामानन्द ध्यानस्थ हुए तब न जाने क्यों उनका मन स्थिर न हो सका। उन्हें लगा जैसे कोई अज्ञात-शक्ति आसन छोड़ने के लिए बाध्य कर रही हो। ऐसा क्यों हो रहा है? इसे समझने के लिए इष्ट नाम जप करते हुए पुनः ध्यानस्थ हो गये।

थोड़ी ही देर बाद उनकी अतीन्द्रिय शक्ति ने उन्हें कारण बता दिया। जमीन से माथा टेककर उन्होंने भगवान् को प्रणाम किया और अपनी कुटिया से बाहर निकल आये।

इतनी जल्दी गुरुजी को बाहर आते देख अधिकांश शिष्यों को आश्चर्य हुआ। सभी शिष्य यह जानते हैं कि गुरुजी सूर्योदय के बाद अपनी कुटिया से बाहर निकलते हैं।

पास खड़े एक शिष्य से उन्होंने कहा—"रामशरण, मैं एक आवश्यक कार्य से नगर के बाहर जा रहा हूँ। वहाँ से वापस आने के बाद पुनः पूजन करूँगा। जो सामग्री जहाँ है, उसी तरह रहने देना।"

स्वामी रामानन्द आश्रम से बाहर निकल गये। देर तक उनकी खड़ाऊँ की आवाज सन्नाटे को भंग करती रही।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नगर से बाहर आकर वे पश्चिम दिशा की ओर बढ़ते गये। काफी दूर आने के बाद हरिजनों की बस्ती मिली। उस बस्ती का नाम था—सड़ुआडीह। इस गाँव में अधिकतर चर्मकार रहते हैं और जूते बनाते हैं। अपने गाँव में प्रातःकाल नगर के स्वनामधन्य स्वामीजी को देखकर चमारों को विस्मय हुआ। जो लोग स्वामी रामानन्द को पहचानते थे, वे दूर से जमीन पर माथा टेककर प्रणाम करने लगे। जिस व्यक्ति का दर्शन पाने के लिए राजा-महाराजा से लेकर संत लोग व्याकुल रहते हैं, आज वही व्यक्ति उनकी बस्ती में आया था।

स्वामीजी ने एक वृद्ध से पूछा—"क्यों भगत, किसके घर अभी हाल में बच्चा पैदा हुआ है?"

वृद्ध ने कुछ देर सोचने के बाद अपनी भाषा में कहा—"मुझे नहीं मालूम महाराज!"

तभी एक युवक ने कहा—'रग्घू दादा के यहाँ १५–२० दिन हुए एक बच्चा पैदा हुआ है।"

स्वामी रामानन्द ने कहा—"मुझे रग्घू के घर जाना है। आओ मेरे साथ।"

स्वामीजी अचानक रग्घू के घर क्यों जा रहे हैं, लोग समझ नहीं पाये। उत्सुकता-वश कई व्यक्ति स्वामी रामानन्दजी के पीछे-पीछे चल पड़े। एक बालक रग्घू के यहाँ स्वामीजी के आने की सूचना देने के लिए दौड़ गया।

रग्घू अपने दरवाजे के पास कौतूहल भरी दृष्टि से अपलक देखता रहा। स्वामीजी के पास आते ही उसने जमीन पर माथा टेककर प्रणाम किया।

स्वामीजी ने कहा—"आयुष्मान भव। कहो भगत, क्या हालचाल है? सुना कि बाप बन गये हो।"

"सब आपके आशीर्वाद से कुशल है, महाराज! आपके आगमन से मेरी कुटिया आज पवित्र हो गयी।"

स्वामीजी ने कहा—"ठीक है, भगवान् सभी का कल्याण करता है। जरा अपने बच्चे को ले आओ।"

रग्घू गोद में उठाकर बच्चे को ले आया और कहा—"महाराज, जबसे पैदा हुआ है तब से न माँ का दूध पीता है और न ऊपर का। भगवान् जानें बचेगा या नहीं।"

स्वामीजी बड़े गौर से बच्चे के शरीर में अंकित लक्षणों[1] को देख रहे थे। कुछ

[1] महापुरुषों में जन्मजात कुल ३२ लक्षण होते हैं। पाँच सूक्ष्म, पाँच दीर्घ, सात स्थान रक्तिम होते हैं। छह स्थान उन्नत, तीन ह्रस्व, तीन विस्तृत और तीन गंभीर होते हैं। ईश्वर से प्राप्त इन लक्षणों के आधार पर व्यक्ति महापुरुष, योगी, संत और प्रतिभावान बनते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देर के बाद वे आनन्दित होते हुए बोले--"भगत, बड़ा भाग्यवान बालक है। क्या नाम रखा है, इसका ?"

रग्घू ने कहा--"अभी तो पैदा हुआ है, महाराज ! अभी से क्या नाम रखें।"

"किस दिन पैदा हुआ है ?"

"इतवार (रविवार) के दिन।"

स्वामीजी ने कहा--"मैं एक बात कहूँ, मानोगे ? जब रविवार को पैदा हुआ है तब इसका नाम रविदास रख दो।"

रग्घू ने हँसकर कहा--"अब भला महाराज हम आपकी बात कैसे टाल सकते हैं। आप अन्तर्यामी महात्मा ठहरे और हम सेवक हैं। मगर यह अभी तक माँ का दूध जब नहीं पी रहा है तब बचेगा कैसे ?"

स्वामी रामानन्द ने बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा--"बेटा रविदास, माँ का दूध अमृत होता है। जाओ माँ का दूध पियो।"

स्वामीजी के जाने के बाद रविदास अचानक रोने लगा। रग्घू की पत्नी घुरबनिया बच्चे को गोद में उठाकर चुप कराने लगी। अचानक उसे लगा जैसे बच्चा उसके स्तन को खोज रहा है। ज्योंही स्तन मुँह से लगाया त्योंही वह दूध पीने लगा। यह दृश्य देखकर घुरबनिया चीखती हुई बोली--"सुनते हो, बच्चा दूध पीने लगा है।"

रग्घू ने कहा--"उसे पीना ही पड़ेगा। महाराज जी आशीर्वाद जो दे गये हैं।"

धीरे-धीरे बालक बड़ा होता गया। गाँव के लोग रविदास की जगह रैदास कहने लगे। काशी की एक परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। विद्या की नगरी होने पर भी केवल वे ही लोग लिख-पढ़ पाते हैं जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं या वंश-परम्परा से जिनके यहाँ अध्ययन होता आ रहा है। गरीब तथा पिछड़ी जाति के लोग यह मानकर चलते हैं कि शिक्षा से मेरे परिवार की कोई भलाई नहीं होगी। इसके बदले कहीं काम पर लग जाय तो जीवन में अपने भोजन की व्यवस्था स्वयं कर लेगा। रविदास के जीवन में यही घटना हुई। रग्घू ने अपने पुत्र को जूते सीने के कार्य में लगाया।

'चमरठा गाँठ न जनई, लोग गठावें पनही' पद से ज्ञात होता है कि रविदास जूते नहीं बनाते थे, बल्कि मरम्मत का काम करते थे। लेकिन उनका मन इस कार्य में नहीं लगता था। वस्तुतः उनमें प्रकृति प्रदत्त ब्रह्म-विषयक ज्ञान का विकास बचपन से ही प्रारंभ हो गया था।

दिन भर में जो कुछ उपार्जन करते, उस रकम को साधु-संतों को दान कर देते थे। रग्घू को यह ज्ञात था कि उनका पुत्र जिस चौराहे पर बैठकर काम करता है, वहाँ काम की कमी नहीं रहती। रकम भी काफी मिलती है, पर न जाने उसका क्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर डालता है। अपनी इस आदत के कारण रविदास को बराबर झिड़कियाँ सुननी पड़ती थीं।

एक दिन घुरबनिया ने कहा कि इसकी शादी कर दो तब कमाई की तरफ ध्यान देगा। अभी तो सोचता है कि बाप हैं, किस बात की फिक्र है। बहू आ जायगी तो खुद ही कमाने की फिक्र करेगा। पत्नी की बात में गहराई है। यह सोचकर रग्घू ने रविदास का विवाह कर दिया।

एक अर्से तक रग्घू शांत रहा। लेकिन जब उसने यह अनुभव किया कि रविदास के चरित्र में कोई अन्तर नहीं आया तब वह बौखला उठा और एक दिन घर से सपत्नीक निकाल दिया।

रविदास ने इसे भाग्य का परिहास समझकर अपना लिया। वे अपने पिता के मकान के पीछे एक सामान्य झोपड़ी बनाकर रहने लगे। इस सम्बन्ध में रामानन्द के शिष्य चेतनदास ने लिखा है--

बड़ भयौ तब न्यारौ कीनौ, बाँटै आवै सो बाँटि न दीनौ।
राध्या बावरी के पछिवारे, कछु न कह्यौ रैदास विचारे॥
सीधो चाम मोलि लै आवै, ताकि पनही अधिक बनावै।
टूटे-फाटे जरवा जोरे, मसकत कारि काहु न निहारै॥

रग्घू का ख्याल था कि परिवार से अलग कर देने पर उसे आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा। भगत बनने का नशा हिरण हो जायगा। लोना (रविदास की पत्नी) उसे इतना तंग करेगी कि उसे दिन-रात मेहनत करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। लेकिन उसकी यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई। लोना भी रविदास के रंग में रंग गयी।

संत रैदास की तरह लोना अपने समाज में आज भी प्रतिष्ठित है। उसे देवी के रूप में लोग पूजते हैं।[1]

धीरे-धीरे दिन गुजरते गये। एक दिन पिताजी की जबानी उसे यह ज्ञात हुआ कि बचपन में वह माँ का दूध नहीं पीता था। अचानक एक दिन स्वामी रामानन्द आये और उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया, उसी दिन से वह माँ का दूध पीने लगा। उन्होंने उसका नाम रविदास रखा है।

---

१. आज भी छोटी जातियों में कोई बीमार पड़ता है तब वे इलाज कराने के पहले या बीमारी के दौरान ओझा बुलाते हैं जो 'लोना' चमाइन का मंत्र पढ़ता है। औरतें इस बात पर विश्वास करती हैं कि लोना बच्चों का मुखंडी रोग दूर कर देती है। अगर किसी बच्चे को उनका आशीर्वाद मिल जाय तो वह दीर्घजीवी तथा स्वस्थ रहते हैं। अपुत्रक को पुत्र देती हैं। एक प्रकार से लोना आज भी इस समाज में प्रतिष्ठित है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वामी रामानन्द की कृपा से वह दूध पीने लगा—–यह बात सुनकर एक दिन शहर आया और स्वामीजी के आश्रम में जाकर कहा—–भगवन्, आपका सेवक आपसे आशीर्वाद लेने आया है। मुझे ज्ञान दीजिए—–

संत तुझी तन संगति प्रान, सतगुरु ज्ञान जानै संत देवादेव।
संत ही संगत, संत कथारस, संत प्रेमि मोहि, दीजै देवादेव ॥

रामानन्द ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—–"रविदास, मैं तुम्हें जन्म-जन्मान्तरों से जानता हूँ। यही तुम्हारा आखिरी जन्म है। तुम सर्वदा राम-राम जपते रहो। इस नाम की महिमा अपरंपार है। इसके जप से ही अजामिल और वाल्मीकि मुनि का उद्धार हुआ। भगवान् तुम्हारा कल्याण करेगा।"

अपने गुरु रामानन्द से आशीर्वाद पाकर रविदास कृतकृत्य हो गये—–

रामानन्द मोहि गुरु मिल्यो, पाये ब्रह्मबिसास।
रामनाम अमीरस पिऔ, रैंदास भयौ पलास ॥

स्वामी रामानन्द से आशीर्वाद पाने के बाद रैंदास प्रभु भक्ति में लीन हो गये। मध्यकालीन संतों में अधिकतर संत कवि पिछड़ी जातियों के थे, जो अपने जीवन की पाठशाला में अध्ययन करने के पश्चात् तत्कालीन रूढ़िवादी समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाए। नामदेव दर्जी, कबीर जुलाहा, सैन नाई, सदन कसाई थे। इनके अलावा अनेक मुसलमान कवियों ने अपना योगदान दिया।

ब्रह्मन बैस सूद अरु ख्यत्री डोम चंडार मलेछ मन सोई।
होई पुनीत भगवंत भजत ते आपु तारि तारे तारे कुल दोई ॥
पंडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबरी अउरु न कोई।
जैसे पुरैन पात रहै जल समीप भनि रविदास जनमे जगि ओइ ॥

घर के पास ही भगवान् की मूर्ति बनाकर वे सपत्नीक भजन किया करते थे। उनकी भक्ति इतने ऊँचे दर्जे की थी कि स्वयं कबीरदास ने एक जगह कहा है—–'संतन में रैदास संत हैं।' संत रैदास की प्रभुभक्ति और विश्वास देखकर एक बोधकथा की याद आती है। एक भक्त थे जो नित्य राम की पूजा करते थे। काफी दिनों तक पूजा करने के बाद भी उनकी मनोकामना पूरी नहीं हुई तब राम के बदले शिव की मूर्ति रखकर पूजा करने लगे।

एक दिन पूजा करने के बाद धूपबत्ती घुमाते समय उनके मन में यह विचार आया कि मैं धूपबत्ती तो शिव को सुँघा रहा हूँ, पर इसे राम की मूर्ति भी सूंघती होगी। झट राम की नाक में रुई घुसेड़ दी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुरत राम प्रकट हो गये। यह देखकर भक्त ने कहा—"प्रभो, इतने दिनों से पूजा करता रहा, पर इस दास को आपने कभी दर्शन नहीं दिए। आज नाक में रुई डालते ही प्रकट हो गये। अगर आपको रुई पसन्द थी तो मुझे इशारा करते।"

राम ने कहा—"ऐसी बात नहीं है। अब तक तुम मुझे केवल मूर्ति समझते रहे। आज तुम्हें इस बात का ज्ञान हुआ कि मैं ही इस मूर्ति में स्थित हूँ, तभी प्रकट हुआ।"

जिन संतों को ईश्वरीय-शक्ति प्राप्त हो जाती है, वे दुःख में न तो घबराते हैं और न सुख में प्रसन्न होते हैं। प्रत्येक स्थिति में उनकी यही धारणा बनी रहती है कि जो कुछ हो रहा है, वह सब प्रभु की लीला है। भगवान् अपने भक्तों की परीक्षा बराबर लेते रहते हैं।

एक बार संत रविदास के यहाँ एक अपरिचित संत आये। इनकी भक्ति तथा कथा कहने के ढंग से वे प्रभावित हुए। दूसरी ओर इनकी गरीबी देखकर मर्माहत हुए। उन्होंने कहा—"रैंदासजी, मैं आपको एक पत्थर देना चाहता हूँ। इससे आपका कल्याण होगा। आपकी आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी।"

रैंदासजी उस वक्त जूते बना रहे थे। उन्होसे निस्पृह भाव से पूछा—"वह कैसे महाराज?"

संत ने कहा—"यह पारस पत्थर है। छूने पर लोहे को सोना बना देगा। उसे बेचकर तुम अपनी गृहस्थी सुधार लोगे।"

रैंदास ने संत की ओर देखते हुए कहा—"अच्छी बात महाराज! आपने बड़ी कृपा की। कृपया आप मेरी झोपड़ी में ऊपर कहीं खोंस दीजिए। इस वक्त हाथ गंदे हैं। बाद में काम ले लूंगा।"

काफी दिनों बाद जब वह संत पुनः काशी आए तो रैदास अपनी पुरानी स्थिति में ही थे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—"यह क्या हालत है तुम्हारी? मैं तुम्हें पारस पत्थर दे गया था, क्या उसका उपयोग नहीं किया या खो गया?"

रैदास ने कुछ सोचते हुए कहा—"महाराज, मैंने उसका उपयोग नहीं किया। मुझे मेरे प्रभु जो कुछ देते हैं, उसी से सन्तुष्ट हूँ। आप जहाँ रख गये थे, शायद अभी तक वहीं है। कृपया इसे आप ले जाइये। मेरे जैसे व्यक्ति के लिए किसी काम की नहीं।"

संत रैदास के जीवन पर बनारसी अक्खड़ता का प्रभाव रहा। आज भी आर्थिक दृष्टि से कमजोर व्यक्ति भी नैतिकता की दृष्टि से प्रखर बने रहते हैं। रैंदास सर्वदा अपने प्रभु के निकट नतमस्तक होते थे। उन्हें अपनी गरीबी प्रिय रही। उन्होंने कभी किसी बात पर गर्व नहीं किया, यहाँ तक कि अपनी जाति और कर्म का परिचय अपनी रचनाओं में बराबर देते रहे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेरी जाति कमीनी पाँति कमीनी ओछा जनमु हमारा।
तुम सरनागति राजा रामचंद कहि रविदास चमारा ।।
जाति भी ओछी करम भी ओछा, ओछा किसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊँच कियो है, कह रैदास चमारा ।।

डंके की चोट पर रैदास ने अपनी जाति के बारे में घोषणा करते हुए अपने कार्य को 'ओछा' भी कहा है। वे इस बात से अच्छी तरह परिचित थे कि सारा भेदभाव यहीं है, प्रभु के दरबार में नहीं। प्राचीनकाल से ही काशी में कुछ रूढ़िवादी लोग यह पसन्द नहीं करते थे कि कोई भी व्यक्ति प्रतिभा, ज्ञान, धर्म आदि के क्षेत्र में उनसे आगे निकल जाय।

एक मोची की बढ़ती हुई ख्याति से उन्हें चिढ़ हो गयी। रैदास को शास्त्रार्थ में ललकारा नहीं जा सकता था। सामाजिक विरोध से उसे जाति से निकाला भी नहीं जा सकता था। एक मोची को मारना, अपना हाथ गंदा करना था। फलतः उसकी शिकायत काशी नरेश से की गयी।

काशी के पंडितों का उग्र विरोध देखकर नरेश ने निर्णय दिया--नागरिकों में धर्म-प्रचार का अधिकार क्या केवल ब्राह्मणों को ही प्राप्य है? इस बात का निर्णय करने के लिए काशी के विद्वत्जनों की एक सभा होगी जिसमें नगर के प्रतिष्ठित नागरिक उपस्थित रहेंगे।

पंडितों ने सोचा--राजा और विद्वत्जनों के बीच किसी भी व्यक्ति से शास्त्रार्थ किया जा सकता है। एक अपढ़ मोची क्या शास्त्रार्थ करेगा। उसे धर्मशास्त्र के बारे में कितनी जानकारी है? एक प्रकार से वे रैदास से निश्चिन्त हो गये।

निश्चित दिन महल के बाहर बाग में विद्वत्जन, नागरिक, राजा और रैदासजी आये। शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। पूर्वपक्ष पंडितों ने किया जिसका उत्तर रैदासजी ने दिया।

विद्वत्जनों ने संतोषजनक निर्णय देकर रैदास से प्रश्न करने को कहा। रैदास द्वारा पूछे एक भी प्रश्न का उत्तर पंडित-समाज नहीं दे सका। उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ।

साधारण नागरिकों को इसमें आनन्द मिला। उन्होंने अनुरोध किया कि सिंहासनारूढ़ भगवान् की मूर्ति सभा में लायी जाय। दोनों पक्ष आह्वान करे। जिसके आह्वान पर मूर्ति गोद में आकर बैठ जायगी, उसे विजयी माना जायगा। पराजित पक्ष विजयी व्यक्ति को सिंहासन पर बैठाकर नगर में घुमायेगा।

जनता के इस अनुरोध पर पंडितों ने अनमने ढंग से स्वीकार किया, क्योंकि वे यह जानते थे कि ऐसा होना संभव नहीं है। पर राजा के सामने विरोध करना उचित नहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पहले पंडितों ने आह्वान किया, पर मूर्ति निश्चल रही। बाद में रैदास ने भाव विभोर होकर गाना शुरू किया—

ऐसो लाल तुझ बिन कौन करे।
दीनदयाल गुसाइयाँ, मेरे माथे छत्र धरे ॥

सिंहासन से वह मूर्ति उछलकर रैदास के गोद में आकर गिरी। पंडितों का चेहरा उतर गया। उपस्थित नागरिक उत्तेजनावश जय-जयकार करने लगे। पंडितों को विवश होकर रैदास को सिंहासन पर बैठाकर घुमाना पड़ा।

काशी में हुई इस घटना का समाचार दूर-दूर तक फैल गया। दलितों में प्रसन्नता की लहर फैल गयी। गली-गली में रैदास के गीत गूंजने लगे।

कहा जाता है कि इसी तरह की एक घटना प्रयाग में भी हुई थी। उन दिनों प्रयाग में कुंभ-मेला लगा हुआ था। उस समय तक रैदास की ख्याति चारों ओर फैल गयी थी। जगह-जगह लोग रैदास के श्रीमुख से कथा और भजन सुनते थे। प्रयाग में भी उनका व्यापक सम्मान होने लगा। यह दृश्य देखकर वहाँ के पंडित कुढ़ गये।

उन लोगों ने घोषणा की कि प्रयाग के पंडित तथा रैदासजी शालिग्राम की एक-एक मूर्ति गंगा में प्रवाहित करेंगे। जिसकी मूर्ति नहीं डूबेगी, वही भगवान् का असली भक्त होगा।

जन श्रुति है कि पंडितों की मूर्ति पानी में गिरते ही डूब गयी, पर रैदासजी की ऊपर तैरती रही। इस अवसर पर रैदासजी कहते रहे—

मूरति मांहि बसे परमेश्वर
तो पानी मांहि तिरै रे।

× × ×

रैदास धीरे-धीरे ख्याति के शिखर पर चढ़ते गये, पर जीवन में हुई चमत्कारपूर्ण घटनाओं के कारण उन्हें कोई गर्व नहीं हुआ और न उन्होंने अपने पैतृक व्यवसाय का त्याग किया।

शाम होने के बाद वे अपने पड़ोसियों को लेकर भजन गाते-गाते विभोर हो जाते थे। उनकी ख्याति सुनकर एक बार एक बनिया उनके यहाँ आया। कीर्तन समाप्त होने पर रैदास सभी को भगवान् का चरणामृत देने लगे।

बनिये को जब चरणामृत मिला तो चमार के हाथ का चरणामृत पीने के बदले उसने लोगों की नजर बचाकर अपने वस्त्रों पर गिरा दिया। केवल पीने का नाटक भर किया। घर आते-आते उसके मन में इतनी घृणा हुई कि सारे कपड़े उतार कर फेंक दिये और स्नान करने चला गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दूसरे दिन उन कपड़ों को सफाई के लिए नित्य आनेवाले भंगी को दान कर दिया। वही भंगी जब तीसरे दिन उसके दिये कपड़े पहनकर सफाई के लिए आया तो उसकी शक्ल देखकर बनिया चौंक उठा। परसों तक काले रंगवाले व्यक्ति का अंग-प्रत्यंग अपूर्व कांति से चमक रहा था। उसे देखते ही बनिया अस्वस्थ हो गया।

वैद्य की दवा होने लगी। रोग अच्छा होने के बदले बढ़ता गया। अन्तर्यामी की कृपा से उसे बोध हुआ। उसने सोचा--शायद रैदास द्वारा दिये चरणामृत के अपमान का दंड भोग रहा हूँ। मन में इस प्रकार की शंका उत्पन्न होते ही वह एक दिन रैदासजी के घर आकर अपने अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा।

सदाशय प्रभु भक्त रैदास ने कहा--"मेरे क्षमा-दान से क्या होगा? मैं आपकी ओर से अपने प्रभु से क्षमा चाहता हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि भगवान् आपको स्वस्थ कर दें।"

कहा जाता है कि वह बनिया उसी दिन से स्वस्थ होने लगा और दो दिन में पूर्ण स्वस्थ हो गया।

रैदास वास्तव में उच्चकोटि के संत थे। वे कबीर की तरह तीखी बात नहीं कहते--

ब्राह्मन तो गुरु जगत भगतन का गुरु नांहि।
उरझ उरझ के पच मुआ चारों वेदन मांहि॥

सिर्फ यही नहीं, तुलसीदास जैसे संत भी खिजलाकर कह गये हैं—'तुलसी अलखहिं का लखहि, राम नाम जप नीच।'

लेकिन संत रैदास कितने शांत और सरल हैं। उन्हें अपने प्रभु की पूजा के लिए शुद्ध सामग्री तक नहीं मिल रही है--

राम मैं पूजा कहाँ चढ़ाऊँ
फल अरु फूल अनूप न पाऊँ
थन तर दूध जो बछरू जुठारी
पुहुप भँवर जल मीन बिगारी
मलयागिरि बेधियो भुअंगा
विष अमृत दोउ एकै संगा
मन ही पूजा मन ही धूप
मन ही सेऊँ सहज सरूप
पूजा-अरचा न जानूँ तेरी
कह रैदास कवन गति मोरी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मसमर्पण का इतना सुंदर भाव कम संतों ने प्रकट किया है। अपनी इसी भक्ति के कारण संत रैदास मध्यकालीन सभी संत कवियों से अलग दिखाई देते हैं। न उन्हें अपनी भक्ति पर गर्व है और न वे किसी को हीन दृष्टि से देखते हैं। सड़क के किनारे बैठे अपने प्रभु के गुण गाते हैं––'भाई रे राम कहाँ है मोहि बताओ।'

कहा जाता है कि अन्तर्यामी प्रभु ने एक दिन कृपावश रैदास के स्वप्न में आकर बोले––"रविदास, अब कल से तुम्हें नित्य पाँच मोहरें प्राप्त होंगी। प्रातःकाल बिछौने के नीचे देखना।"

रविदास ने कहा––"प्रभो, मैं इसे लेकर क्या करूँगा। आप मेरी कुटिया में आये और मैं धन्य हो गया––

आज दिवस लेऊँ बलिहारा। मेरे घर आया राम का प्यारा।
आँगन बँगला भवन भयो पावन। हरिजन बैठे हरिगुन गावन।
करूँ डंडवत चरन पखारूँ। तनमन धन उन पर वारूँ।
कह रैदास मिलै निजदासा। जनम जनम कै काटै पासा॥"

भगवान् ने कहा––"तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो उस रकम से एक मंदिर बनवा लेना।"

रैदास कितने उच्चकोटि के संत थे, इसका उदाहरण उस ब्राह्मण को भी प्राप्त हो गया जो अंत्यजों को हेय दृष्टि से देखता था। कहा जाता है कि एक ब्राह्मण महाशय किसी रघुवंशी ठाकुर की ओर से नित्य गंगा-पूजन करने जाते थे।

एक दिन मार्ग में उनकी पनही टूट गयी। कुछ दूर आने पर उन्होंने देखा–– रैदास सड़क किनारे बैठे जूते सी रहे हैं। उसे पनही देकर बोले––जरा इसे ठीक कर दो।

रविदास ने कहा––"गंगा-स्नान के लिए जा रहे हैं, महाराज ?"

ब्राह्मण ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। चलते समय रविदास ने कहा––"जब आप गंगा माता को पूजा करें तब मेरी ओर से यह सुपारी उन्हें चढ़ा दीजिएगा।"

ब्राह्मण ने सोचा––क्या हर्ज है। जूते की मरम्मत के पैसे नहीं ले रहा है। बदले में छोटा-सा कार्य करना है। स्नान आदि करने के बाद ब्राह्मण ने पूजा की। चलते समय अचानक रैदास की दी हुई सुपारी पर नजर पड़ी। एक अछूत की सुपारी को कैसे वे नैवेद्य में चढ़ाते (उसे उठाकर तुरत गंगा की ओर फेंक दिया। दूसरे ही क्षण कंगनयुक्त दो हाथ बाहर निकले और उस सुपारी को हवा से लेकर पुनः जल के भीतर घुस गए)

इस दृश्य को देखकर ब्राह्मण महोदय चकित रह गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि स्वयं माता गंगा ने रैदास के नैवेद्य को स्वीकार किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कई बार तीर्थयात्रा करने के बाद भी रैदास का मन अतृप्त रहा। इस बार उनकी इच्छा राजस्थान की ओर जाने को हुई। कई वर्ष पूर्व चित्तौड़ की झाली रानी जब काशी आयी थीं तब उन्होंने अपने यहाँ बुलाया था।

काशी के महान् संत आये हैं सुनकर झाली रानी ने उनके सम्मान में भंडारे का प्रबंध किया। विद्वतजन, नागरिक और संतों का समागम हुआ। एक अछूत का इतना सम्मान अधिकांश लोगों को खल गया।

पंडितों ने सोचा कि विरोध करने पर राजरोष के भागी होंगे। इससे अच्छा है कि हम स्वतंत्र रूप से भोजन बनायें। महल की ओर से ब्राह्मणों को आवश्यक खाद्य सामग्री दे दी गयी।

भोजन बनाने के बाद जब ब्राह्मणों का समूह खाने बैठा तो देखा कि प्रत्येक की बगल में रैदास बैठे हैं। रैदास के इस चमत्कार को देखकर वे भोजन करना भूल गये। उन्हें ज्ञान हुआ कि हम जिसे अछूत समझ रहे हैं, वे असाधारण व्यक्ति हैं। आवश्यकता पड़ने पर स्वयं भगवान् को सूकर से लेकर नरसिंह रूप धारण करना पड़ा था। अपने अपराध के लिए उन लोगों ने रैदास से क्षमा माँगी।

कहा जाता है कि उस अवसर पर रैदास ने अपनी त्वचा को चीरकर दिखाया और कहा—"मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मण था। अपने पापकर्म के कारण मुझे पुनर्जन्म लेना पड़ा।"

रैदास के इस चमत्कार से झाली रानी अत्यन्त प्रभावित हुईं। उनकी स्मृति में एक नहीं, कई स्मारक बनवाये—रैदास की छतरी और श्यामजी का मंदिर।

चित्तौड़ से रैदास माण्डोगढ़ आये। यहाँ गंगा माता के सम्मान में एक भण्डारा किया। गंगा एक सुन्दरी के वेश में आयीं और रैदास का प्रसाद ग्रहण किया। गंगा के सौन्दर्य को देखकर वहाँ का राजा आसक्त हो गया। उन्होंने रैदास से कहा कि मैं इस युवती से विवाह करना चाहता हूँ।

संत रैदास ने दृढ़तापूर्वक इसे अस्वीकार कर दिया। सिर्फ यही नहीं, जो लोग संत रैदास की ख्याति और प्रतिभा से परिचित थे, उन्होंने भी विरोध किया।

इतना विरोध होते देख राजहठ तीव्र हो गया। राजा ने आज्ञा दी कि मैं उस युवती से विवाह करूँगा। अगर रैदास इसे स्वीकार नहीं करेंगे तो उन्हें मृत्यु दण्ड दिया जायगा।

इस पर भी रैदास राजी नहीं हुए, पर भक्त की रक्षा के लिए स्वयं गंगा माता राजी हो गयीं। शर्त यह रखी गयी कि बारात जल्द से जल्द आनी चाहिए।

राजा शर्त के अनुसार बारात लेकर आया: रैदास के आश्रम के समीप कुण्ड के पास बारात ठहरी। थोड़ी देर बाद गंगा पूर्ण श्रृंगार करके आयीं और कुण्ड में कूद गयीं। गंगा के कुण्ड में गिरते ही उसमें से एक तेज धारा तीव्र गति से निकलने लगी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा जाता है कि उस धारा में राजा सहित सभी बाराती डूब गये। केवल वे ही लोग बच गये जो इस विवाह का विरोध करते रहे या रैदासजी के भक्त थे।

× × ×

रैदास के जन्म और मृत्यु के बारे में अनेक विद्वानों में मतभेद है। खासकर महारानी मीरा के प्रसंग को लेकर। डॉ० धर्मपाल मैनी ने विभिन्न ग्रंथों के अध्ययन के बाद लिखा है—"यदि उनका जन्म संवत् १४५६ के आसपास मान लिया जाय तो रामानन्द के शिष्य होने में, कबीर से कुछ छोटे और समकालीन होने में तथा लगभग १२८ वर्ष की आयु पाने में विशेष आपत्ति का स्थान नहीं है।"

रैदास साहित्य के अधिकारी विद्वान् डा० वेणीप्रसाद शर्मा ने भी रामानन्द के शिष्य चेतन द्वारा संवत् १५०५ में रचित 'प्रसंग पारिजात' के आधार पर उनका जन्मकाल यही स्वीकार किया है जबकि कुछ लोग १५०० कहते हैं।

संत रैदास की निधन तिथि संवत् १५८४ थी जैसा कि अनन्तदास ने लिखा है—

पन्द्रह सौ चउ असी, भई चितौर महं भीर।
जर-जर देह कंचन भई, रवि रवि मिल्यौ शरीर॥

इससे स्पष्ट है कि रैदासजी का निधन संवत् १५८४ को चित्तौड़ में हुआ था। जब कि रानी मीरा का जन्म संवत् १५७३ को हुआ था (कुछ लोग संवत् १५६० भी मानते हैं)। इस सम्बन्ध में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है—"संत रविदास के अनुयायियों को बहुधा रविदास या रैदास कहते हुए आज तक सुना जाता है। इस कारण अनुमान किया जा सकता है कि मीराबाई के गुरु सम्भवतः रैदासी सम्प्रदाय के कोई ऐसे आचार्य रहे होंगे जो उस समय जीवित रहे होंगे।"

गुजरात और राजस्थान के कुछ लोग आज भी यह मानते हैं कि वे यहाँ के निवासी थे, क्योंकि उनकी रचनाओं में यहाँ के अनेक शब्द हैं। इतिहासकारों ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वामी विवेकानन्द

परमहंस रामकृष्ण देव जिन्हें उनके भक्त 'ठाकुर' कहते थे, अपने एक भक्त सुरेन्द्रनाथ के विशेष अनुरोध पर उनके घर आये। अत्यन्त श्रद्धा के साथ सुरेन्द्रनाथ ने उन्हें प्रणाम किया और घर के भीतर ले आये। सुरेन्द्रनाथ के घर ठाकुर आये हैं, यह समाचार सुनकर आसपास से भी अनेक लोग उनका दर्शन करने चले आये।

ठाकुर कुछ देर तक धर्म-चर्चा करने के बाद बोले--"तुम लोगों में से कोई भजन सुना सकता है ? इस वक्त भजन सुनने की इच्छा हो रही है।"

सुरेन्द्रनाथ कुछ देर आगत लोगों को देखते रहे। फिर अचानक अपने नौकर से कहा—"भजा, देख तो नरेन्द्र घर पर है या नहीं। अगर वह घर पर हो तो उसे अपने साथ लेते आना। कहना मैंने बुलाया है।"

ज्योंही नरेन्द्रनाथ ने अपने पड़ोसी सुरेन्द्रनाथ के घर में प्रवेश किया त्योंही रामकृष्णदेव चौंक उठे। उनके अतीन्द्रिय ने सूचना दी--यह युवक ब्रह्मलोक का ऋषि है।

अपने अतीन्द्रिय की आवाज सुनते ही रामकृष्ण चौकन्ने हो गये। एक टक नरेन्द्रनाथ को देखने लगे। वे अब तक इसी युवक की तलाश में थे जो उनके आदर्शों तथा विचारों का उपयोग कर सके। नरेन्द्रनाथ का भजन सुनते-सुनते रामकृष्णदेव को भाव-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाधि हो गयी। भजन समाप्त होने पर रामकृष्ण पास आकर नरेन्द्र के अंग-प्रत्यंग का स्पर्श कर देखने लगे।

उनका यह व्यवहार नरेन्द्र को नागवार-सा लगा। नाम-धाम पूछने के बाद ठाकुर ने कहा—"एक बार दक्षिणेश्वर आओ। हम सब तुम्हारा गायन सुनेंगे। बड़ा अच्छा कंठ है तुम्हारा। बोलो, आओगे ?"

शिष्टाचारवश नरेन्द्र को कहना पड़ा—"कभी समय मिला तो आ जाऊँगा।"

इस घटना के कई सप्ताह बाद उनके रिश्तेदार रामचन्द्र ने एक दिन बातचीत के सिलसिले में कहा—"बेकार तुम ब्रह्म-समाज में समय बरबाद कर रहे हो। अगर तुम्हें धर्म-ज्ञान की जिज्ञासा है तो रामकृष्ण ठाकुर के यहाँ चले जाओ। वहाँ जाने से तुम अनुभव करोगे कि वे कितने बड़े साधक हैं।"

एकाएक नरेन्द्रनाथ को स्मरण हो आया कि मैंने दक्षिणेश्वर जाकर भजन सुनाने का वादा किया था। संयोग की बात थी कि एक दिन पड़ोसी सुरेन्द्रनाथ ने उनसे कहा—"हम लोग गाड़ी से दक्षिणेश्वर जा रहे हैं। तुम भी चलो।"

अंधे को क्या चाहिए ? दो आँखें। नरेन्द्र तुरत तैयार हो गया। यह सन् १८८१ ई० के दिसम्बर माह की घटना है। रामकृष्णजी के वहाँ जाते ही लोगों ने भजन के लिए अनुरोध किया।

नरेन्द्रनाथ ने कहा—"मैं केवल दो-चार भजन जानता हूँ।"

ठाकुर ने कहा—"जो याद है, वही सुनाओ।"

गाना समाप्त होते ही परमहंस ठाकुर नरेन्द्र का हाथ पकड़कर बरामदे की ओर ले गये। भावातुर होकर रुँधे कंठ से उन्होंने कहा—"इतने दिनों बाद आये हो ? मैं कबसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। तुम्हारे लिए मैं परेशान था।"

इतना कहते-कहते परमहंसजी रो पड़े। पुनः हाथ जोड़ते हुए बोले—"मैं जानता हूँ प्रभु, तुम वही सनातन ऋषि हो। नर के रूप में नारायण हो। संसार का कष्ट दूर करने के लिए अवतरित हुए हो।"

रामकृष्ण के इस व्यवहार का प्रभाव उन पर कैसा पड़ा, उन्हीं के शब्दों में सुनिये—"मैं तो वैसे व्यवहार से निर्वाक (अवाक्) और स्तंभित रह गया। सोचने लगा कि किसे देखने आया हूँ। यह तो पूरा पागल है। अपने बारे में मुझे मालूम है कि मैं विश्वनाथ दत्त का पुत्र हूँ। इधर मुझे कुछ और बताया जा रहा है। मैं चुपचाप खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद वे घर के भीतर से मक्खन-मिश्री और संदेश लाकर अपने हाथ से खिलाने लगे। मैं बार-बार कहता रहा कि यह मिठाई मुझे दीजिए। मैं अपने मित्रों में बाँटकर खाऊँगा। उन्होंने मेरे आग्रह को अस्वीकार कर दिया। बोले—'वे लोग बाद में खायेंगे, तुम मेरे हाथ से खा लो।' इतना कहकर वे फिर मिठाई खिलाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगे। इसके बाद उन्होंने मेरे हाथों को पकड़कर कहा––'वादा करो, तुम शीघ्र किसी दिन अकेले यहाँ आओगे ?' उन्होंने जिस तरह अनुरोध किया, उसे देखते हुए मैंने कहा कि शीघ्र ही आऊँगा। इसके बाद मैं फिर वहीं आकर बैठ गया जहाँ मेरे अन्य साथी बैठे थे।

"मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि कुछ देर बाद श्री ठाकुर जब इस कमरे में आये तब वे स्वाभाविक रूप में थे। उनकी बातचीत या व्यवहार में कोई असामन्यता नहीं थी। कुछ देर तक वे ईश्वरीय-लीला की चर्चा करते रहे। तभी उन्हें भाव समाधि हो गयी। मैं उनकी ओर विस्मय से देखता रहा। उनकी बातों से ऐसा लगा कि वे पुस्तकों से रटी हुई बातें नहीं कह रहे हैं।"

उपस्थित लोगों में से किसी ने प्रश्न किया––"क्या भगवान् को देखा जा सकता है ?"

परमहंस ने कहा––"हाँ, उन्हें देखा जा सकता है। जैसे मैं तुम्हें देख रहा हूँ, तुम मुझे देख रहे हो। ठीक इसी प्रकार, बल्कि और निकट से देखा जा सकता है, उनसे बातें की जा सकती है, पर वैसा करना कौन चाहता है ? लोग पति-पुत्र, पिता के शोक में अश्रुपात करते हैं, सम्पत्ति तथा धन के लिए रोते हैं, पर भगवान् के लिए क्या कोई रोता है ? कोई कहता है कि हाय, अब तक मुझे भगवान् नहीं मिले। क्या एक भी ऐसा उदाहरण दे सकते हो ? मुझे उनका दर्शन नहीं मिला, ऐसा समझकर कोई रो पड़े तो उसे अवश्य दर्शन मिलेगा।"

परमहंस के कथन का व्यापक प्रभाव नरेन्द्र के मन पर पड़ा। यह आदमी सनकी भले ही हो, पर ईश्वर के लिए ऐसा त्याग कोई विरला ही कर पाता है। सनकी होते हुए महान् तपस्वी और योगी पुरुष हैं। इन्होंने जरूर ईश्वर के दर्शन किए हैं।

इन्हीं बातों का चिंतन करता हुआ नरेन्द्र उस दिन घर वापस आ गया। लेकिन परमहंसजी की बातों को वे भुला नहीं सके। परमहंसजी के बारे में वे जितना अधिक सोचते, उतनी ही अधिक गहराई में डूब जाते थे। इधर नरेन्द्रनाथ के चले जाने के बाद से परमहंसजी का हृदय व्याकुल हो उठा। दोनों ओर आकर्षण की लौ लगी थी। परमहंसजी को लगा जैसे उनके हृदय को भीगे गमछे की तरह किसी ने कसकर निचोड़ डाला है। जब चाह अधिक बढ़ गयी तब अपने आप कह उठे––"अरे, अब तो आ जा। तुझे बिना देखे रहा नहीं जाता।"

परमहंसजी की व्याकुलता का प्रभाव नरेन्द्र पर पड़ा। खाने-सोने, पढ़ने-लिखने में अरुचि हो गयी। ठाकुर का आकर्षण तीव्र से तीव्रतर हो गया। उन्हें लगा कि अगर शीघ्र उनसे मुलाकात न करूँगा तो मैं पागल हो जाऊँगा। आखिर एक दिन ठाकुर के आकर्षण ने उन्हें बुला लिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इधर परमहंसजी समझ गये कि उनका नरेन्द्र आज आ रहा है। वे उसके आने की प्रतीक्षा बड़ी बेसब्री से करने लगे। ज्योंही नरेन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया त्योंही आगे बढ़कर परमहंसजी ने कहा——"तू आ गया ?"

यह कहते हुए उसका हाथ पकड़कर उन्होंने चौकी पर बैठाया। सहसा परमहंसजी में अद्‌भुत परिवर्तन हुआ। वे अस्पष्ट स्वर में कुछ कहते हुए नरेन्द्र के पास सरक आये।

इस दिन की अनुभूति के बारे में नरेन्द्रनाथ ने लिखा है——"ठाकुर को हरकत करते देख मैं सावधान हो गया। पता नहीं, सनक में आकर कुछ कर बैठें तो क्या होगा ? एकाएक मेरे पास आकर उन्होंने अपने दाहिने पैर से मुझे छू दिया। इस स्पर्श से ही मेरे अंतर में एक अपूर्व अनुभूति हुई। मेरी आँखें काम कर रही थीं, पर ऐसा लग रहा था जैसे दीवार, दरवाजे आदि घूमते हुए गायब होते जा रहे हैं। मेरा अहंभाव भी सर्वग्रासी महाशून्य में विलीन होता जा रहा है। अनजाने भय से मैं काँप उठा। मुझे लगा कि अगर मेरा अहंभाव इस प्रकार नष्ट हो गया तो मेरा भी नाश हो जायगा। अब मेरी मृत्यु सन्निकट है। अपने को सम्हाल न सकने के कारण मैं चीख उठा——'आपने यह क्या किया ? मेरी ऐसी दशा क्यों हो गयी ? मेरे माँ हैं, बाप हैं, भाई-बहन हैं।'

मेरी बातें सुनकर वह पागल आदमी खिलखिलाकर हँस पड़ा। इसके बाद मेरे वक्षस्थल पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा——'आज यहीं तक। लगता है, एक बार में नहीं होगा। कल फिर होगा।'

आश्चर्य की बात यह हुई कि ज्योंही परमहंसजी ने मेरा स्पर्श किया त्योंही वे अलौकिक अनुभूतियाँ गायब हो गयीं और मैं पूर्व स्थिति में आ गया।"

नरेन्द्रनाथ यह नहीं समझ सके कि वह कौन सा जादू था जिसने उन्हें कुछ देर के लिए अभिभूत कर डाला था। नरेन्द्रनाथ ने सोचा कि अब भविष्य में इस व्यक्ति से और अधिक सावधान रहना पड़ेगा। निश्चय ही यह व्यक्ति असाधारण शक्तिशाली है। मेरे जैसे दृढ़ इच्छा-शक्तिवाले व्यक्ति को जब यह तोड़ सकता है तब साधारण लोगों की स्थिति और बदतर हो सकती है।

नरेन्द्र को ठीक करने के बाद परमहंसजी सामान्य व्यक्ति बन गये। उन्हें प्रसाद खिलाने के बाद परमहंसजी ने पूछा——"अब कब आओगे ?"

——मौका मिलते ही आ जाऊँगा।

——वादा करो शीघ्र आओगे।

उनके मासूम चेहरे की ओर देखते हुए नरेन्द्र ने कहा——"जल्द ही आऊँगा।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घर आने पर नरेन्द्र यही सोचने लगा कि आखिर वह कौन सी शक्ति थी जिसके कारण मेरी चेतना लुप्त हो गयी। मैं एक अलौकिक संसार में विचरण करने लगा। इस प्रकार ऊहापोह करते एक सप्ताह बीत गया। चित्त जब काफी शान्त हो गया तब एक दिन पुनः नरेन्द्र दक्षिणेश्वर चला आया।

नरेन्द्र को देखते ही परमहंसजी उसे अपनी बैठक में ले आये। नरेन्द्र उस दिन की घटना को भूला नहीं था। आज वह अपनी ओर से चौकन्ना था ताकि उस दिन की तरह पुनः किसी चक्कर में न फँस जाऊँ।

परमहंसजी से यह रहस्य छिपा नहीं रहा। देखते ही देखते वे समाधिस्थ हो गये और इस बीच धीरे से उन्होंने पैर से नरेन्द्र का स्पर्श किया। नरेन्द्र भरसक प्रयत्न करता रहा कि वह सजग रहे, पर उसकी शक्ति जवाब दे गयी। धीरे-धीरे उसका बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया।

होश आने पर नरेन्द्र ने देखा कि परमहंसजी उसका वक्षस्थल सहला रहे हैं। उनके चेहरे पर मुसकान थी। नरेन्द्र पुनः सोचने लगा——यह कैसे हुआ?

एक बार की क्रिया में परमहंसजी को नरेन्द्र के बारे में सारी बातें मालूम नहीं हो सकी थीं, इसलिए उन्हें क्रिया करने की आवश्यकता हुई। नरेन्द्रनाथ को देखते ही वे पहचान गये थे कि यह देवपुरुष है। एक दिन अपने ज्ञान तथा विवेक से समस्त संसार को चमत्कृत कर देगा। अपने अनुमान की पुष्टि के लिए उन्हें परखना आवश्यक हो गया था।

स्वयं परमहंस ठाकुर ने एक बार नरेन्द्र के साथ की गयी इस क्रिया के बारे में कहा था——"बाहरी चेतना लुप्त हो जाने पर मैंने उस दिन नरेन्द्र से अनेक प्रश्न किये। वह कौन है, कहाँ से आया है, क्यों आया है, कब तक संसार में रहेगा? यह सब पूछने पर उसने जवाब दिया था। उसके बारे में जो कुछ देखा या सोचा था, सारी बातें सही रहीं। मुझे संतोष है कि मेरा अनुमान ठीक था। वह सब गुप्त बातें हैं। जिस दिन नरेन्द्र इस बात को जान लेगा कि वह कौन है, क्यों आया है, उस दिन वह इस लोक में नहीं रहेगा। दृढ़ संकल्प की सहायता से योगबल के द्वारा उसी क्षण शरीर छोड़ देगा। वास्तव में नरेन्द्र ध्यान सिद्ध महात्मा है।"

इस घटना के बाद से नरेन्द्र बराबर परमहंसजी के यहाँ जाता-आता रहा। दोनों एक दूसरे को अच्छी तरह समझते रहे। परमहंस द्वारा शक्ति हस्तांतरित होने के पूर्व तक नरेन्द्र उनकी बातों को आँख मूंदकर नहीं मानता था। यह ठीक है कि रामकृष्णजी पर उसकी असीम श्रद्धा थी, पर उनकी बातों पर गंभीरतापूर्वक विचार करता रहा। रामकृष्ण देव के पास जाकर घंटों बैठे रहते, पर काली मंदिर में नहीं जाते थे। मूर्ति-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूजा पर वे विश्वास नहीं करते थे। जब कभी रामकृष्ण देव अपने अलौकिक दर्शन के बारे में कोई घटना कहते तब नरेन्द्र कहता--"यह सब आपके दिमाग का फितूर है। ईश्वरीय रूप नहीं।"

रामकृष्ण देव इन बातों को सुनकर नाराज नहीं होते थे। सहानुभूति के साथ उसे समझाते रहते। अध्यात्म और दर्शन की बातें समझाते हुए उसका निर्माण करते रहते।

ध्यान का शौक लगने के बाद एक बार नरेन्द्र को अद्भुत-दर्शन हुआ था। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा था--"स्कूल में पढ़ते समय एक रात को मैं द्वार बंद कर ध्यान करते-करते अंतर्लीन हो गया। कितनी देर ऐसी तन्मयता से ध्यान करता रहा, कह नहीं सकता। एकाएक जब ध्यान भंग हुआ तब देखा कि दक्षिण दीवाल को भेदकर एक ज्योतिर्मय मूर्ति निकल आयी है जो मेरे सामने खड़ी है। उसके मुख पर अद्भुत ज्योति थी, पर कोई भाव न था, प्रशांत संन्यासी मूर्ति। मुंडित मस्तक, हाथ में कमंडल और दंड। कुछ देर तक वह मूर्ति मेरी ओर एक टक देखती रही जैसे कुछ कहना चाहती हो। मैं अवाक् होकर उसकी ओर देखता रहा। न जाने क्यों इस स्थिति को देखकर मैं भयभीत हो उठा और दरवाजा खोलकर बाहर भाग गया। संभव था कि वह मूर्ति मुझसे कुछ कहती, परन्तु प्रयत्न करने पर भी फिर कभी उस मूर्ति के दर्शन मुझे नहीं हुए। कितने दिन मनन और ध्यान किया और संकल्प किया कि यदि फिर उसके दर्शन मिले तो मैं उससे डरूँगा नहीं, बल्कि बातचीत करूँगा। लेकिन यह सौभाग्य फिर प्राप्त नहीं हुआ।"

इसी समय एक शिष्य के प्रश्न पर उन्होंने कहा--"हाँ, मैंने काफी सोचा था, पर उस समय कोई ओर-छोर नहीं मिला। अब ऐसा अनुमान होता है कि साक्षात् भगवान् बुद्धदेव ने ही मुझे दर्शन दिये थे।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद पिताजी का निधन हो गया। स्थिति भयानक हो गयी। यहाँ तक कि चारों ओर से असफल होने के कारण नरेन्द्र ने आत्महत्या करने का निश्चय किया। ठीक इसी समय दैव प्रेरणा से उन्हें भगवान् रामकृष्ण की याद आ गयी। उन्होंने सोचा--"अगर वे चाहें तो कुछ कर सकते हैं। वे तो काली माता से बातें करते हैं। ईश्वर को देख चुके हैं। ईश्वर अगर कृपालु हो जाय तो सारा कष्ट दूर हो सकता है।"

इस निश्चय के बाद नरेन्द्र सीधे दक्षिणेश्वर आये। अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए उन्होंने रामकृष्ण देव से कहा--"आप अपनी माँ से मेरे लिए प्रार्थना कीजिये जिससे मेरा कष्ट दूर हो जाय।"

--"मैं माँ से कुछ नहीं माँगता और न माँग पाऊँगा। तू स्वयं जाकर माँग ले। लेकिन तू तो माँ को मानता नहीं, शायद इसीलिए तुझे कष्ट है।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

—"जब तक आप मेरे लिए कोई व्यवस्था नहीं करेंगे तब तक मैं यहाँ आगे से पैर भी नहीं रखूंगा।"

रामकृष्ण देव कुछ देर स्नेह पूर्ण दृष्टि से देखते हुए बोले—"मैंने माँ से कहा था कि नरेन्द्र का कष्ट दूर कर दो। उसका पोषण करो। लगता है माँ मेरी बात सुनती नहीं। शायद माँ चाहती हैं कि तू स्वयं मुझसे ये सारी बातें कह। तुझ पर उनका वात्सल्य कम नहीं है।" अपने आँसुओं को पोंछते हुए रामकृष्ण देव ने पुनः कहा—"आज मंगलवार है। आज रात को माँ के निकट जाकर जो माँगेगा, वही मिलेगा। जी भरकर उन्हें प्रणाम करना और जी भरकर उनसे माँग लेना।"

रामकृष्ण देव की बातों का प्रभाव नरेन्द्र पर पड़ा। वह बड़ी बेसब्री के साथ रात्रि की प्रतीक्षा करने लगा। रात्रि के प्रथम प्रहर में रामकृष्ण देव ने कहा—"जा, समय हो गया। जो कुछ माँगना है, माँग ले। माँ का अक्षय-भंडार लूट ले।"

मंदिर के भीतर कोई नहीं था। सामने निखिल धात्री, वात्सल्यमयी माँ के चेहरे से मोहिनी मुसकान प्रकट हो रही थी। महामाया माँ अभया मुद्रा में समारूढ़ हैं। इस क्षेममयी, त्रिभुवन तारिणी माँ के सामने जाकर नरेन्द्र खड़ा हो गया। उसे लगा जैसे सारा कष्ट, सारी चिंताएँ निःशेष हो गयी हैं। उसका हृदय अवर्णनीय आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। गदगद स्वर में नरेन्द्र ने कहा—"माँ, मुझे वैराग्य दो, ज्ञान दो, भक्ति दो और अपने दर्शन दो।"

काफी देर तक मंदिर में काली मूर्ति के सामने भावाविष्ट होकर खड़े रहे। बाहर आते ही बड़ी उत्सुकता के साथ परमहंस ने पूछा—"क्यों रे, माँग लिया न?"

यह बात सुनते ही नरेन्द्र चौंक उठा। अबोध शिशु की तरह सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं, माँ के सामने जाकर मैं सब कुछ भूल गया।"

परमहंसजी ने कहा—"जा, जा। फिर जा। माँ से सब कुछ माँग ले। आज वे जरूर देंगी।"

रामकृष्ण ने बड़े आग्रह के साथ पुनः भेजा। इस बार भी वे ही बातें हुईं। तीन-तीन बार असफल होने पर नरेन्द्र झुंझला उठा। मंदिर के भीतर पहुँच जाने पर उसका मस्तिष्क काम नहीं करता। बाहर आते ही वह ठीक हो जाता है। जरूर यह जादूगर मन को घुमा देता है।

इस बार बाहर आने पर नरेन्द्र ने कहा—"मैं भीतर जाकर माँ के सामने अपने कष्टों को क्यों नहीं कह पाता, समझ में नहीं आ रहा है। निश्चित रूप से आप कुछ करते हैं। अब मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। मेरी माँ और भाई-बहनों के लिए आपको कुछ प्रबंध करना ही पड़ेगा।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नरेन्द्र के भवितव्य को देखकर रामकृष्ण की आँखें सजल हो उठीं। वे स्नेह के साथ उसे देखते रहे। तभी नरेन्द्र ने पुनः कहा——"जब तक आप इस भार को स्वीकार नहीं करेंगे तब तक मैं आपको छोड़ूंगा नहीं।"

परमहंसजी स्निग्ध मुसकान बिखेरते हुए बोले——"अच्छी बात है। अब तू जा। मैं माँ से कहूँगा कि तुझे तथा तेरे आश्रितों को आजीवन भोजन-वस्त्र की कमी न हो।"

उसी दिन से नरेन्द्रनाथ के नास्तिक हृदय में परिवर्तन होने लगा। उन्होंने जगज्जननी के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया। इससे परमहंसजी को अपार प्रसन्नता हुई। वे जानते थे कि ऐसा होगा और इसी दिन की वे प्रतीक्षा करते रहे। नरेन्द्र ने स्वीकार किया कि हिन्दू-जाति प्रतिमा के माध्यम से उपासना करती है और ऐसी शिक्षा देती है कि नास्तिक भी आस्तिक बन जाते हैं।

× × ×

अनाहार, अनाश्रय और असफलता के कारण नरेन्द्र बुरी तरह टूट गया था। चचेरे भाइयों तथा पिताजी के चाचा ने सम्पत्ति के लोभ में पड़कर नरेन्द्र की माँ तथा उसके छोटे भाइयों को घर से निकाल दिया था। अपमान के इस घूंट को सभी लोग चुपचाप पी गये। नरेन्द्र की माँ आजीवन अपमान सहती रही। नरेन्द्र के पिता विश्वनाथ दत्त की आमदनी कम नहीं थी। कलकत्ता में बड़े शान-शौकत से रहते थे। केवल नरेन्द्र की देखरेख के लिए दो-दो आया थीं। विश्वनाथ के वैभव को देखकर एक धनी व्यक्ति ने उनसे कहा था——"अगर आप मेरी लड़की को नरेन्द्र की बहू बना लें तो मैं दस हजार रुपये दहेज में दूँगा।"

नरेन्द्र इस विवाह के लिए राजी नहीं हुआ। उपार्जन विश्वनाथ दत्त करते थे, पर गृहस्वामी थे——विश्वनाथ दत्त के सगे चाचा काली प्रसाद दत्त। वे इतने जालिम थे कि नरेन्द्र की माँ को पहनने के लिए वस्त्र और भरपेट भोजन देने में भी कंजूसी करते थे। जब एक दिन यह बात विश्वनाथ दत्त के कान में आयी तब वे नाराज होकर बोले—— "मैं इतना कमाता हूँ और मेरी पत्नी को भरपेट भोजन नहीं मिलता? आश्चर्य है!"

इसके आगे कुछ करने या कहने का साहस उनमें नहीं था। अपने पति की इस कमजोरी को भुवनेश्वर अच्छी तरह जानती थी। उन्हें विश्वनाथ दत्त ने अपनी अर्जित सम्पत्ति से कभी कुछ नहीं दिया था। सारी आय कालीप्रसाद पहले ही हड़प लिया करते थे। फिर वह दिन भी आया जब विश्वनाथ दत्त इस दुनिया से चल बसे।

यह घटना उस समय हुई थी। जब नरेन्द्रनाथ बी० ए० पास करके बी० एल० में भर्ती हुए थे।

नरेन्द्रनाथ की इच्छा थी कि बी० एल० पास करने के बाद वे इंग्लैंड जाकर कानून की शिक्षा ग्रहण करेंगे। विश्वनाथ अपने पुत्र की इस इच्छा का समर्थन करते रहे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लेकिन पिता-पुत्र का यह स्वप्न अधूरा रह गया। १३ फरवरी, १८८४ ई० को उनका निधन हो गया।

विश्वनाथ कलकत्ता हाईकोर्ट के एटर्नी थे। काफी आमदनी थी। लोगों का विश्वास था कि विश्वनाथ दत्त काफी रकम छोड़ गये होंगे। बाद में पता चला कि वे कर्ज की लंबी रकम छोड़ गये हैं। उनकी समस्त आमदनी कालीप्रसाद ले लेते थे। उनके इस जुल्म के प्रति मुँह खोलकर विरोध करने का साहस विश्वनाथ में नहीं था। न केवल विश्वनाथ दत्त की पत्नी आजीवन भोजन-वस्त्र के लिए तरसती रही, बल्कि विश्वनाथ दत्त की माँ भी अपनी ननद से अपमानित होती रहीं। विश्वनाथ के पिता दुर्गाप्रसाद ने जब एक बार अपनी आँखों से विधवा बहन को पत्नी का अपमान करते हुए देखा तब वे अपने दुःख को रोक नहीं सके। उसी दिन वे घर से हमेशा के लिए बिदा हो गये। पति के गायब हो जाने के बाद नरेन्द्रनाथ की दादी (श्यामा सुंदरी) हैजे से पीड़ित होकर चल बसी। फलतः शिशु विश्वनाथ का लालन-पालन कालीप्रसाद करते रहे। इसी एहसान के कारण विश्वनाथ आजीवन अपने चाचा से दबते रहे।

विश्वनाथ का निधन होते ही कालीप्रसाद ने उनके परिवार को घर से निकाल दिया। अब घर में कोई कामधेनु गाय नहीं थी। मुफ्त में इन सात प्राणियों का पालन-पोषण वे क्यों करते? नरेन्द्र बचपन से ही क्रोधी था। जब अधिक तोड़फोड़ करने लगता तब माँ उसके सिर पर पानी छिड़ककर 'जय बाबा वीरेश्वर' कहती। इससे वह शांत हो जाता था। काशी के वीरेश्वर महादेव की आराधना करने पर ही नरेन्द्र-नाथ का जन्म हुआ था। अब वही बालक नौकरी की तलाश में दर-दर की ठोकरें खा रहा था। सुबह उठते ही कहता—"आज मेरा अमुक जगह निमंत्रण है। मेरी प्रतीक्षा मत करना। मेरे लिए भोजन मत बनाना।" फिर नरेन्द्र नौकरी की तलाश में निकल जाता। शाम को भूखा-प्यासा वापस आकर सो जाता। कभी-कभी यह भी सुनता कि आज घर में किसी ने नहीं खाया। न रहने को अपना मकान और न खाने को भोजन। उसके सामने छोटे भाई-बहन भूख से तड़पते रहते। यह दृश्य देखकर उसका हृदय आत्मग्लानि से भर जाता। फिर भी परम पिता परमेश्वर को याद करता रहता।

सबसे अधिक दुःख उस दिन हुआ जिस दिन भगवान् का नाम लेते ही माँ ने बड़े तिक्त मन से कहा—"चुप रह छोकरे। जब देखो तब भगवान् का नाम लेता रहता है। भगवान् ने ही हमें स्वर्ग से खींचकर नरक में ढकेल दिया है।"

आजीवन कष्ट सहते-सहते माँ बुरी तरह टूट चुकी है। अब उसे भगवान् पर भी आस्था नहीं रही। ये सारी बातें नरेन्द्र समझता था, पर आज माँ की फटकार तीर सी चुभ गयी। दुख सहते-सहते उसका हृदय पहले ही क्षत-विक्षत हो चुका था। वह सोचने लगा—क्या वास्तव में ईश्वर हैं? अगर है तो यह अन्याय क्यों?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पिताजी के निधन के पूर्व ही नरेन्द्र ब्रह्म समाज के सम्पर्क में आया था और उसका कर्मठ कार्यकर्ता भी बन चुका था। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशव सेन, नव गोपाल मित्र, पंडित शिवनाथ शास्त्री जैसे महारथी उसे जानते थे। यहाँ तक कि जब वह परमहंस रामकृष्ण का शिष्य बनकर कार्य करने लगा तब इन्हीं लोगों ने कहा था—"अगर नरेन्द्र रामकृष्ण के चक्कर में न फँसता तो भारत का सर्वश्रेष्ठ ब्राह्म प्रचारक होता।"

स्वयं नरेन्द्र की ब्राह्म समाज के प्रति गहरी आस्था थी। तूफानी गति से वह ब्राह्म समाज का कार्य करता था। एक बार रामकृष्ण के यहाँ सर्वश्री केशवचन्द्र सेन, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी आदि ब्रह्म समाजी बैठे थे। जब वे लोग चले गये तब रामकृष्ण ने शेष बैठे हुए लोगों से कहा—"केशव जिस शक्ति के माध्यम से ऊपर उठ रहा है, मेरे नरेन्द्र के भीतर वैसी १८ शक्तियाँ हैं। मैंने यह भी देखा कि केशव और विजय का हृदय दीप-शिखा की तरह ज्ञानलोक से उज्ज्वल हो रहा है और नरेन्द्र के भीतर का ज्ञानसूर्य उदित होकर मोह-माया को दूर कर रहा है?"

अपनी प्रशंसा सुनकर नरेन्द्र ने झल्लाकर कहा—"आप यह सब क्या कह रहे हैं? ऐसी बातें सुनकर लोग आपको पागल समझेंगे। कहाँ जगत विख्यात केशव सेन, महामना विजयकृष्ण गोस्वामी और कहाँ मैं कालेज का सामान्य छोकरा। आप इन लोगों के साथ मेरी तुलना कर रहे हैं?"

दरअसल ब्राह्म-समाज के इन दिग्गजों के आगे नरेन्द्र अपने को तुच्छ समझता रहा। जबकि रामकृष्ण देव अपनी योगदृष्टि से यह जान चुके थे कि नरेन्द्र कौन है और मानव-रूप में क्यों आया है? इस संसार में क्या-क्या करेगा।

इसी बीच एटर्नी कार्यालय में नरेन्द्र को लिपिक का कार्य मिल गया था। कुछ पुस्तकों के अनुवाद का कार्य भी मिला। एक दिन नरेन्द्र को पता चला कि साधारण ब्राह्म-समाज द्वारा संचालित सिटी कालेजिएट स्कूल में एक अध्यापक का पद रिक्त है। नरेन्द्रनाथ ने तुरत पंडित शिवनाथ शास्त्री के पास जाकर निवेदन किया। उसे विश्वास था कि ब्राह्म-समाज के कार्यकर्ता के नाते यह नौकरी उसे अवश्य प्राप्त हो जायगी।

शास्त्रीजी ने उसके प्रश्न का उत्तर न देकर स्वयं ही प्रश्न किया—"अभी तक तुम अपने लिए नौकरी नहीं खोज सके? बड़े आश्चर्य की बात है?"

यह उत्तर सुनकर नरेन्द्र हक्का-बक्का रह गया। उसे दृढ़ विश्वास था कि उसकी सेवाओं को देखते हुए शास्त्रीजी उसे रख लेंगे।

नरेन्द्र के भीतर छिपी हुई जो विराटशक्ति थी, वह स्कूल मास्टरी जैसी नगण्य नौकरी के लिए नहीं थी। उसे अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं था। रामकृष्ण देव उसे पहचान गये थे, पर उसे जाग्रत करने का समय नहीं आया था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दरअसल नरेन्द्र को अध्यापक की नौकरी इसलिए नहीं दी गयी कि ब्राह्म समाज का कार्यकर्ता होते हुए भी वह मूर्ति-पूजक रामकृष्ण देव के यहाँ आता-जाता रहा। नरेन्द्र का यह आचरण शास्त्रीजी को पसन्द नहीं था, इसलिए वे उसकी उपेक्षा कर गये। यह दैव संयोग था, वर्ना नरेन्द्र विश्व में कभी विवेकानन्द के रूप में गौरवान्वित न होता।

परमहंसजी ने कहा था--"मेरा नरेन्द्र सामान्य मानव नहीं है। वह ब्रह्मलोक का ऋषि है। उसमें बाल्मीकि, व्यास, बुद्ध, शंकर तथा नेपोलियन की आत्माएँ प्रवेश कर गयी हैं।"

रामकृष्ण के संपर्क में आने का कारण उनकी ज्ञान-पिपासा था। जिस प्रकार संसार की समस्त नदियाँ समुद्र से जा मिलती हैं, ठीक उसी प्रकार उन्हें अपने इष्ट से मिलना था। यही उनका भवितव्य रहा। उन्होंने उन दिनों की मनःस्थिति के बारे में लिखा है--"यौवन में पदार्पण करने के बाद प्रत्येक रात सोते समय दो प्रकार की कल्पनाएँ मेरे मन में उठती थीं। एक में मैं यह देखता था जैसे मुझे अपार संपत्ति प्राप्त हुई है। सारी दुनिया मुझे धन कुवेर कह रही है। मैं समाज का सबसे बड़ा आदमी हूँ। उस समय यही अनुभव होता था कि ऐसी शक्ति मुझमें है। दूसरे क्षण मैं देखता कि मानो धरती का सब कुछ त्याग कर अपने को ईश्वर पर निर्भर कर मैंने कौपीन धारण कर लिया है। स्वेच्छा से भोजन कर रहा हूँ, पेड़ के नीचे सो रहा हूँ। उस वक्त भी वही शक्ति मुझे प्रेरणा दे रही थी कि अगर मैं चाहूँ तो ऋषि-मुनियों की तरह जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। इस प्रकार मेरे मन में दो प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती रहीं, पर मेरा हृदय दूसरा जीवन पसंद करने लगा था। मैं सोचता था कि परमानन्द की प्राप्ति के लिए इस मार्ग को अपनाना होगा। उस समय भूमानन्द का विषय सोचते हुए मन ईश्वर-चिंता में मग्न हो जाता था। आश्चर्य की बात यह है कि ऐसी घटनाएँ काफी दिनों तक नित्य होती रहीं।"

ब्राह्म-समाज में काम करते हुए एक बार नरेन्द्र ने महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर से पूछा था--"महाशय, क्या आपने ईश्वर को देखा है?"

महर्षि इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने कहा--"तुम्हारे नेत्र योगियों की तरह हैं।"

अपने प्रश्न का यह उत्तर पाकर उन्हें बड़ी निराशा हुई। वे ऐसे महापुरुष की तलाश करने लगे जो यह कह सके कि मैंने ईश्वर को देखा है। ब्राह्म-समाज के आडम्बर से उनका मन तृप्त नहीं हुआ था। यह संस्था तो केवल समाज-सुधार के लिए सक्रिय रहती। सत्य-वस्तु की प्राप्ति के लिए कुछ नहीं करती।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन दिनों नरेन्द्र सिमुलिया मुहल्ले में रहता था। उनके मुहल्ले में श्री सुरेन्द्रनाथ मित्र के यहाँ सन् १८८१ ई० के नवम्बर माह में परमहंस रामकृष्ण देव शिष्यों के साथ निमंत्रित थे। इस आयोजन में भजन गाने की फरमाइश होने पर मित्र महाशय ने नरेन्द्र को अपने यहाँ बुलवाया। नरेन्द्र बचपन से ही प्रतिभाशाली था। अच्छा तैराक, कुशल अश्वारोही, मँजा हुआ पहलवान था। गुल्ली-डंडा, दौड़धूप, मुक्केबाजी, लाठी-तलवार आदि कार्यों में सिद्धहस्त था। अखाड़े में नित्य कुश्ती लड़ने जाता था। भारतीय अखाड़ों के देवता हनुमान हैं। वे महावीर (हनुमान) से इतने प्रभावित थे कि अपने एक भाषण में उन्होंने कहा है—"सारे भारत में महावीर की पूजा चालू करा दो। दुर्बल जाति के सामने इस महावीर्य का आदर्श उपस्थित कर दो। शरीर में बल नहीं, हृदय में साहस नहीं, क्या होगा इन जड़पिण्डों से ? मेरी इच्छा है कि घर-घर महावीर की पूजा हो।"

यह उनके चरित्र का एक पहलू था तो दूसरी ओर वे संगीत के अच्छे जानकार थे। सुगायक के अलावा यंत्र-संगीत के कुशल कलाकार थे। तत्कालीन ध्रुपद गायकों से गायन की शिक्षा ली थी। ब्राह्म-समाज के रविवासरीय उपासना में बराबर भजन गाते थे।

× × ×

नरेन्द्रनाथ की सारी चिन्ताएँ दूर हो गयी थीं। अब वे काली मूर्ति को प्रस्तरमयी नहीं, चिन्मयी, ब्रह्माण्ड भांडोदरी, भक्ति मुक्तिदायनी, भय-विनाशनी जगन्माता के रूप में मानने लगे थे।

नरेन्द्रनाथ की बेकारी और अभाव दूर हो गया। अब उन्हें निरंतर कार्य मिलने लगा। रामकृष्ण देव अपनी भावधारा के माध्यम से नरेन्द्रनाथ को साधना की एक-एक सीढ़ी चढ़ाते गये। अनेक प्रकार की अतीन्द्रिय अनुभूतियों के माध्यम से उन्होंने सत्य को पहचाना।

अपने गुरु से प्राप्त आध्यात्मिक साधना के माध्यम से उन्होंने धर्म-जगत् के एक नवीन द्वार का उद्घाटन किया। उन्होंने लोगों को बताया कि इस संसार में सबसे ऊपर मनुष्य है। उन्होंने मुक्ति-साधना का एक नया पथ पराधीन भारतवासियों को दिया। विश्व बंधुत्व, मानव-सेवा का सर्वप्रथम बीज बोनेवाले नरेन्द्रनाथ ही थे जिन्होंने प्रत्येक मानव को शिव के रूप में देखा।

अधिकांश विद्वानों का कहना है कि भारत ने भगवान् तथागत के उपदेशों और विचारों की उपेक्षा की है, इसीलिए आज हम नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अगर हम बुद्ध के आदर्शों को अपनाये रहते तो यह दिन न देखना पड़ता। बुद्ध ने सोये हुए भारतवासियों को जगाया था। शायद यह बात सही हो। परंतु बुद्ध के बाद जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार्य स्वामी विवेकानन्द ने किया, अगर हम उस पर ध्यान देते, उनके विचारों को पचाकर उस मार्ग पर चलते तो न केवल समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन होता बल्कि विदेशी दासता से मुक्ति मिल जाती और संसार के उन्नत राष्ट्रों में हमारी गणना होती।

नरेन्द्रनाथ ने कहा––"संसार के इतिहास का पर्यालोचन करो तो जहाँ कहीं भी किसी महान् आदर्श का संधान मिले तो समझ लो कि उसका जन्म भारतवर्ष में हुआ था। अतीतकाल से भारत भूमि मानव समाज के लिए अमूल्य भावों की खान बनी हुई है।"

नरेन्द्रनाथ ने परमहंस के उस सिद्धांत को सर्वत्र प्रचारित किया है जिसमें कहा गया है––"सर्वधर्म समन्वय वेद का प्रथम सूत्र है––नर-नारायण की सेवा।" राष्ट्र तथा समाज की उन्नति और कल्याण के लिए सबसे अधिक आवश्यक है कि देशवासी 'मनुष्य' बनें। वे बराबर भगवान् से यही प्रार्थना करते थे––"भगवान् मेरे देश के निवासियों को मनुष्य बनाओ।"

स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे––"शरीर और आत्मा मिलकर मनुष्य बनते हैं। शरीर तुच्छ नहीं है, शरीर आत्मा का मंदिर है। सुंदर मंदिर में सुंदर विग्रह के रहने पर सोने में सोहागा होता है। इसलिए शरीर-मंदिर को स्वस्थ बनाओ। हमारे पूर्वज कह गये हैं––"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।" देह मंदिर और विग्रह आत्मा हैं। आत्मा ही ईश्वर है। आत्मा के प्रति अविश्वास का अर्थ है नास्तिकता।

सन् १८८५ ई० में रामकृष्ण देव कंठ-रोग से पीड़ित हुए। नरेन्द्रनाथ दिन-रात गुरु की सेवा में लग गये। गुरु-सेवा से खाली होते ही अपने गुरु भाइयों के साथ तीव्र साधना में निमग्न हो जाते। ज्यों-ज्यों उनकी साधना उग्र होती गयी त्यों-त्यों उनके हृदय की व्याकुलता बढ़ती गयी। अभी तक नरेन्द्र को चरम वस्तु प्राप्त नहीं हुई थी, इसीलिए वे आहार-निद्रा त्यागकर साधना में डूब गये थे।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन नरेन्द्र ने गुरुदेव से कहा––"मैं शुकदेव मुनि की भाँति समाधि में डूब जाना चाहता हूँ। केवल देह-रक्षा के लिए कुछ नीचे उतरकर समाधिस्थ होना चाहता हूँ।"

नरेन्द्र की इच्छा को सुनते ही रामकृष्ण देव ने नाराज होकर कहा––"तू ऐसा सोच रहा है? छीः छीः। मेरा ख्याल था कि तू एक विशाल वट वृक्ष बनेगा जिसकी छाया में अगणित नर-नारी आश्रय ग्रहण करेंगे। पर तू केवल अपने स्वार्थ की बात सोच रहा है?"

गुरुदेव की इच्छा को सुनकर नरेन्द्र को होश आया कि वे मुझे क्या बनाना चाहते हैं। मुझसे क्या कराना चाहते हैं? अपने स्वार्थी मन के प्रति उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। चुपचाप आँसू बहाने लगे। इस घटना के कुछ दिनों बाद वे काशीपुर स्थित बाग में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ध्यान लगाकर बैठ गये। धीरे-धीरे समाधि में लीन हो गये। बाहर से देखने पर लगता था जैसे मृत हो गये हैं।

यह दृश्य देखकर नरेन्द्र का एक गुरुभाई भयभीत होकर गुरुदेव के पास दौड़ता हुआ गया और उनसे निवेदन किया—"गुरुदेव, नरेन्द्र तो मर गया।"

परमहंसजी स्थिति को समझ गये। उन्होंने कहा—"अच्छा हुआ। अब कुछ देर उसी स्थिति में रहे। यह लड़का मुझे बहुत तंग करता है।"

रात को जब नरेन्द्र सहज अवस्था में हुआ तब गुरुदेव के पास आया। गुरुदेव ने गंभीर होकर पूछा—"क्यों रे, इस बार माँ ने सब कुछ दिखा दिया या नहीं? यह याद रखना, आगे से चाभी मेरे पास रहेगी। माँ का काम तुझे करना हैं। जब माँ का काम समाप्त हो जायगा तब यह अवस्था तुझे मिलेगी।"

कहने का मतलब यह कि गुरुदेव ने नरेन्द्र की समाधि का मार्ग बंद कर दिया। इसी कारण आगे चलकर नरेन्द्र की सारी शक्ति, समस्त प्रतिभा संसार के दुखी और आर्तजनों की सेवा में लग गयी। यह चमत्कार भगवान् रामकृष्ण की कृपा से ही हुआ।

परमहंसजी को यह ज्ञात हो गया कि अब मेरे जाने का समय हो गया है—केवल चंद रोज का मेहमान हूँ। इसलिए वे नरेन्द्रनाथ को बराबर यह समझाने लगे कि आगे उसे क्या-क्या करना है। काम का बोझ देखकर नरेन्द्र झुँझलाकर कह उठा—"इतना काम मुझसे नहीं होगा। मैं नहीं करूँगा।"

रामकृष्ण देव ने कहा—"तुझे करना पड़ेगा।"

काफी दिनों से नरेन्द्रनाथ गुरु की सेवा में लगे थे। इस बीच घर भी नहीं जा सके, आखिर एक दिन माँ ममता के कारण काशीपुर आईं। माँ के साथ छोटा भाई भी था। रामकृष्ण देव विस्तर पर लेटे हुए थे।

नरेन्द्र की माँ को देखते ही ठाकुर ने कहा—"डाक्टरों ने मुझे बातचीत करने के लिए मना किया है, पर आपसे बात करनी आवश्यक है। आप आयी, यह अच्छा हुआ। आप इस वक्त नरेन्द्र को अपने साथ ले जाइये।"

नरेन्द्र पास ही खड़ा था। उसकी ओर एक बार देखने के बाद ठाकुर ने पुनः कहा—"गिरीश आदि मित्रों ने जबरन इसे गेरुआ वस्त्र पहनाया है। मैंने विरोध किया था—अभी तुम्हें संन्यासी नहीं बनना है। तुम्हारे माँ, छोटे भाई-बहनें हैं।"

सारी बातें सुनने के बाद माँ ने जमीन से माथा टेककर ठाकुर को प्रणाम किया। इसके बाद नरेन्द्र को साथ लेकर वापस चली आयीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शरीर त्यागने के तीन-चार दिन पूर्व एक दिन शाम को ठाकुर ने नरेन्द्र को बुलवाया। उस समय कमरे में ठाकुर और नरेन्द्रनाथ के अलावा अन्य कोई नहीं था। ठाकुर ने दरवाजा बंद करने की आज्ञा दी। इसके बाद ज्योंही नरेन्द्र उनके पास आकर बैठा त्योंही वे समाधिस्थ हो गये।

एकाएक नरेन्द्रनाथ ने अनुभव किया कि ठाकुर के शरीर से बिजली की तरह ज्योति निकाली और स्वयं उनके अपने शरीर में समा गयी। इसके साथ ही स्वयं नरेन्द्र भी समाधि में लीन हो गये। काफी देर तक यह स्थिति बनी रही। जब नरेन्द्र प्रकृतिस्थ हुए तब उन्होंने देखा--रामकृष्ण देव का आनन आँसुओं से भींगा हुआ है।

नरेन्द्र ने व्याकुल होकर पूछा--"क्या हुआ गुरुदेव ?"

रामकृष्ण देव ने गदगद होकर कहा--"आज तुझे सर्वस्व देकर मैं फकीर हो गया बेटा। बिलकुल खाली हो गया। इस शक्ति के जरिये तू संसार में अनेक कार्य करेगा। जिस दिन तेरा काम समाप्त हो जायगा, उस दिन तू यहाँ से चला जायगा।"

नरेन्द्र को अपनी समस्त आध्यात्मिक-शक्ति सौंपकर भगवान् रामकृष्ण परम शांति अनुभव करने लगे। कंठ-रोग बढ़ने लगा। नरेन्द्र उनकी सेवा करता रहा। अचानक उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि गुरुदेव इस समय यह कहें कि मैं भगवान् हूँ तभी विश्वास करूँगा।

ज्योंही नरेन्द्र के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ त्योंही भगवान् रामकृष्ण को अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से सूचना मिल गयी। उन्होंने कहा--"अभी तक तू अंध-विश्वास के झूले में झूल रहा है ? मैं सच कह रहा हूँ, जो राम और कृष्ण थे, वही इस समय मेरे शरीर में रामकृष्ण के रूप में हैं।"

गुरुदेव की बातें सुनकर नरेन्द्र चौंक उठा। अपने संदेह पर उन्हें पश्चाताप होने लगा। गुरु के चरणों पर सिर रखकर वह रोने लगा। रामकृष्ण देव नरेन्द्र के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले--"अच्छा हुआ जो शंका-निवारण हो गया।"

१६ अगस्त, सन् १८८६ ई० को १ बजकर ६ मिनट पर रामकृष्ण देव समाधि लगाकर बैठे और दूसरे दिन दोपहर को ब्रह्मलीन हो गये।

रामकृष्ण देव के निधन के पश्चात् उनके १६ शिष्यों ने 'त्यागी संघ' बनाया था। सहसा वह बिखर गया। अर्थ और स्थानाभाव के कारण। नरेन्द्र इस घटना से बड़े दुखी हुए। अगर गुरुदेव रहते तो यह स्थिति उत्पन्न न होती।

ठीक इन्हीं दिनों रामकृष्ण देव के परम भक्त श्री सुरेन्द्रनाथ ने नरेन्द्र के पास जाकर कहा--"तुम अपने गुरु भाइयों को लेकर कार्य प्रारंभ करो। तुम लोगों के लिए मैं अर्थ की व्यवस्था कर दूँगा।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नरेन्द्र की सवालिया सूरत देखकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा––"आज शाम को मैं जब आफिस से लौटा तब एकाएक मेरे कमरे में एक अपूर्व ज्योति प्रकट हुई। उसमें गुरुदेव दिखाई दिये। उन्होंने कहा––"सुरेन्द्र, तुम क्या कर रहे हो ? मेरे बच्चे निराश्रय भटक रहे हैं। उनके रहने के लिए स्थान का प्रबंध करो।" इस आदेश को सुनते ही मैं तुम्हारी तलाश में चला आया। तुम्हें यह मालूम ही है कि मैं काशीपुर वाले आश्रम की सेवा में लगा रहा। उसे बंद नहीं करूँगा। मेरा अनुरोध है कि तुम लोग अपना काम बंद मत करो। कम से कम हम लोग कभी-कभी वहाँ जाकर शांति प्राप्त करेंगे।"

सुरेन्द्रनाथजी के सहयोग से नरेन्द्रनाथ अपने कुछ गुरु भाइयों को लेकर वराह नगर स्थित मकान में जाकर रहने लगे। सन् १८८७ ई० में इन लोगों ने संन्यास ग्रहण किया। अब यह बताना कठिन है कि उस दिन संन्यास लेने के बाद नरेन्द्रनाथ ने कौन सा नाम ग्रहण किया था। संभवतः विविदिषानन्द या सच्चिदानन्द था, क्योंकि अमेरिका जाने के पूर्व उन्होंने खेतड़ी नरेश के अनुरोध पर अपना नाम विवेकानन्द नाम रखा था।[1]

वराह नगर के मठ में सभी गुरु भाई पूजा-पाठ, जप, ध्यान, शास्त्र-चर्चा और कीर्तन करने लगे। रामकृष्ण देव ने जिन कार्यों को करने का आदेश दिया था, वे सभी कार्य होने लगे। उन दिनों श्रद्धावश दान बहुत कम लोग देते थे। फलतः सभी शिष्य माड़-भात खाते थे। तरकारी के नाम पर कुंदरू की पत्तियाँ उबालकर खाते थे। कभी-कभी उपवास भी करना पड़ता था। आश्चर्य की बात यह है कि इस कष्ट से घबराकर कोई भागा नहीं।

कुछ दिनों बाद विवेकानन्द ने घोषणा की कि अब मैं भारत-भ्रमण करूँगा। वाराह नगर से वाराणसी होते हुए वे ऋषीकेश गये। इस यात्रा में उन्होंने अपने देशवासियों का वास्तविक रूप देखा। दर्द से उनकी आत्मा कराह उठी। लाखों-करोड़ों नारायण नर के रूप में नारकीय जीवन बिता रहे थे। उन्होंने निश्चय किया कि इन पददलितों का उद्धार करना होगा। कूपमंडूकों को बताना होगा कि तुम सामान्य व्यक्ति नहीं हो, ईश्वर के रूप हो। रामकृष्ण देव की प्रेरणा से वे जन-सेवा करने लगे।

भ्रमण के साथ-साथ उनकी साधना और अध्ययन भी चलते रहे। अपने प्यारे भारतवासियों में चेतना उत्पन्न करने में भी वे लगे। इनकी वाक्-शक्ति देखकर बड़े-बड़े

१. भारत के प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पंडित झाबरमल शर्मा ने अपनी पुस्तक 'खेतड़ी नरेश और विवेकानन्द' में लिखा है––"प्रत्यक्षदर्शी मुंशी जगमोहन लाल ने लेखक को बताया कि खेतड़ी नरेश ने उनसे कहा था––'मेरी समझ से आपके योग्य नाम है––विवेकानन्द।' राजा साहब की इच्छानुसार उसी दिन से स्वामीजी ने अपना नाम विवेकानन्द रख लिया।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विद्वान् चकित रह जाते । वहाँ तक कि इनके सभी गुरु-भाई इनकी महाशक्ति को देखकर विस्मित हो उठे । विवेकानन्द की इस महाशक्ति के पीछे रामकृष्ण देव कार्य कर रहे थे । स्वयं स्वामी विवेकानन्द को पल-प्रतिपल इसका अनुभव हो रहा था ।

एक दिन आपने अपने गुरु भाइयों से कहा कि अब मैं अकेला यात्रा पर जाऊँगा । विवेकानन्द हमें छोड़कर जा रहा है यह जानकर सभी गुरु भाई व्याकुल हो उठे । लेकिन विवेकानन्द ने किसी के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया । उन्होंने निश्चय किया कि परिव्राजक के रूप में नर-नारायण की सेवा करूँगा ।

इस यात्रा के दौरान वे खेतड़ी राज्य में गये । वहाँ राजस्थान के अद्वितीय व्याकरणाचार्य नारायणदास के यहाँ पतंजलि का भाष्य पढ़ने लगे । आपके दो दिनों के अध्ययन को देखकर पंडित नारायणदास ने कहा--"स्वामीजी, आप जैसा विद्यार्थी मैंने कभी नही देखा । आप असाधारण हैं ।"

खेतड़ी के राजा श्री अजीत सिंह आपकी प्रतिभा से प्रभावित हुए । वे पुत्रहीन थे । स्वामीजी से राजा ने आशीर्वाद की कामना की । राजा की स्थिति को देखकर उन्होंने कहा--"तुम्हें पुत्र अवश्य होगा । यह मेरा आशीर्वाद है ।"

वहाँ से स्वामीजी पोरबंदर गये । वहाँ गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान् श्री शंकर पांडुरंग उन दिनों वेदों का अनुवाद कर रहें थे । पांडुरंगजी की सहायता में स्वामीजी लग गये । स्वामीजी के कार्य को देखकर एक दिन पांडुरंग ने कहा--"स्वामीजी, आप विश्व के महान् तपस्वियों में अन्यतम हैं । सच तो यह है कि आप इस भारत भूमि के योग्य नहीं है । अगर आप पाश्चात्य देशों में जाकर भारतीय संस्कृति की शंखध्वनि करें तो उत्तम होगा । आज इसकी आवश्यकता भी है ।"

स्वामीजी ने कहा--"एक बार मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ था । पर यह संभव कैसे होगा, समझ में नहीं आ रहा हैं ।"

पांडुरंगजी के यहाँ से चलकर दक्षिण भारत की कई जगहें घूमते हुए स्वामीजी मैसूर राज्य जा पहुँचे । यहाँ के दीवान सर के० शेषाद्रि अय्यर आपके प्रति आकृष्ट हुए । मैसूर के राजा ने आपको अपने महल में बुलवाया और पंडित-सभा के बीच आपने भाषण दिया । आपके भाषण का पंडितों के अलावा महाराजा पर व्यापक प्रभाव पड़ा । महाराजा ने आपके चरणों पर बहूमूल्य भेंट रखते हुए कहा--"इसे स्वीकार करने की कृपा करें ।"

स्वामीजी ने कहा--"राजन, मैंने प्रतिज्ञा की है कि परिव्राजक अवस्था में धन स्पर्श नहीं करूँगा । आप यह सब धन मेरे नर रूपी नारायणों को बाँट दीजिए । जो निर्धन हैं और जिन्हें इसकी आवश्यकता है ।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैसूर से मद्रास आदि शहरों में अपने भाषण देते हुए स्वामीजी कन्या कुमारी गये। देवी का दर्शन करने के बाद उन्होंने कहा—"जननी, मैं मुक्ति नहीं चाहता। आपकी सेवा करना चाहता हूँ।"

मंदिर के सामने स्थित एक विशाल शिलाखंड पर बैठकर वे ध्यान मग्न हो गये। ध्यानावस्था में गुरुदेव परमहंस ने आशीर्वाद दिया—"दरिद्र भारतवासियों का प्रतिनिधि बनकर तुम्हें पाश्चात्य देशों का भ्रमण करना है। विश्व-मानवता, विश्व बंधुत्व की भावना की अलख जगाना है। इस पुण्य-कार्य में तुम्हें सफलता मिलेगी।"

इस आदेश को सुनते ही उनका ध्यान भंग हो गया। सामने हिन्द महासागर, दाहिने अरब और वायें बंगाल सागर लहरा रहा था। पीछे कन्याकुमारी का मंदिर उन्हें प्रेरणा देने लगा। वे समझ नहीं पा रहे थे कि कैसे संबलहीन स्थिति में इतनी दूर की यात्रा कर सकूंगा।

वे कन्याकुमारी से कई जगह भाषण देते हुए मद्रास गये। वहाँ एक दिन स्वप्न में उन्होंने देखा—रामकृष्णदेव का ज्योतिर्मय शरीर समुद्र के जल के ऊपर आया और वे अपने पीछे आने का संकेत कर रहे हैं। पूर्व की ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा—"जाओ, देर मत करो।"

दूसरे दिन खेतड़ी के महाराजा का एक आदमी स्वामीजी को खोजता हुआ आया। उसने निवेदन किया कि आपके आशीर्वाद से महाराज को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है। महाराज का अनुरोध है कि आप खेतड़ी पदार्पण कर नवजात को आशीर्वाद दें। इससे हम सब कृतार्थ होंगे।

बातचीत के सिलसिले में जब खेतड़ी नरेश को यह मालूम हुआ कि वे विदेश जाना चाहते हैं तब उन्होंने सारा प्रबंध कर दिया।

स्वामीजी लंका, सिंगापुर, हाँगकाँग, नागासाकी, ओसाका, टोकियो होते हुए कनाडा गये और वहाँ से वे शिकागो पहुँचे। यात्रा में बराबर गुरुदेव का आशीर्वाद मिलता रहा। मार्ग में एक महिला बातचीत से इतना प्रभावित हुई कि वह आपको अपने घर ले गयी। आपके लिए पादरियों जैसी पोशाक बनवा दी। ब्रिजी मेडोज नामक इस महिला के प्रयत्न से आपने कई जगह भाषण दिये। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे० एच० राइट आपके भाषणों से इतने प्रभावित हुए कि तुरत आगामी सितम्बर माह में होनेवाली धर्म-सभा में भाषण देने के लिए आपको अवसर दिलाया।

११ सितम्बर, १८९३ ई० का दिन ऐतिहासिक था। उस दिन भारत के इस महान् संत ने संसार के सभी धार्मिक प्रतिनिधियों को हिलाकर रख दिया। सभी देशों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

के प्रतिनिधि अपना-अपना भाषण लिखकर लाये थे। केवल स्वामी विवेकानन्द ने अलिखित भाषण दिया था।

उन्होंने पाश्चात्य परम्परा के विरुद्ध "मेरे अमेरिका निवासी भाइयों तथा बहनो" कहकर ज्योंही संबोधन किया त्योंही हाल के अधिकांश लोग खड़े होकर इस महान् संत के सम्मान में कई मिनट तक तालियाँ बजाते रहे। अमेरिका के इतिहास में इस प्रकार की यह पहली घटना थी। भगवान् रामकृष्ण के शिष्य ने उन्हें नयी भाषा में नये रस का आस्वादन कराया। सभी लोगों के अंतर के तार झंकृत हो उठे। विवेकानन्द की वाणी ने कमाल कर दिखाया।

इस दिन की घटना के बारे में महर्षि रोमा रोलाँ ने लिखा है—"यह रामकृष्ण का ही निःश्वास था जो समस्त विघ्न-बाधाओं का अतिक्रमणकर उनके शिष्य के मुँह से निःसृत हुआ था।"

भगिनी निवेदिता ने लिखा—"स्वामीजी ने जब शिकागो महासभा में भाषण देना आरंभ किया था तब हिन्दुओं की प्राचीन भाव-राशि के सम्बन्ध में ही कहा था। किन्तु जब उनका भाषण समाप्त हुआ तब आधुनिक हिन्दू-धर्म की व्याख्या की।"

दैनिक पत्रों ने लिखा—"उनकी वक्तृता सुनने के बाद भारत की तरह ज्ञानवृद्ध देश में धर्म-प्रचारक भेजना कैसी मूर्खता का काम है, इसे हम विशेष रूप से अनुभव कर रहे हैं।"

प्राचीनकाल के अश्वमेध यज्ञ करनेवाले दिग्विजयी सम्राटों की भाँति सुदूर अमेरिका में भारतीय दर्शन-अध्यात्म का झंडा गाड़कर स्वामीजी ने प्राच्य-सभ्यता का दिग्दर्शन कराया। जो लोग इस देश के निवासियों को असभ्य तथा साँपों और संन्यासियों का मुल्क समझते आ रहे थे, उन्होंने इस भारतीय संत के आगे अपना सिर झुका दिया। स्वामीजी तूफानी गति से अमेरिका के विभिन्न शहरों में भाषण देते रहे।

अमेरिका के बारे में स्वामीजी ने कहा है—"जब मैं अमेरिका में था तब भी मुझमें अद्भुत शक्तियों का स्फुरण हुआ करता था। क्षण मात्र में मैं मनुष्य की आँखों से उसके मन के सब भावों को जान लेता था। किसी के मन में कैसी भी बात क्यों न हो, वह सब मेरे सामने प्रत्यक्ष हो जाती थी। कभी किसी-किसी से अनायास ही उसके मन की गोप्य बातें भी कह दिया करता था। जिन-जिन लोगों को मैं ऐसा कहता, उनमें से अनेक मेरे चेले बन जाते थे और यदि कोई किसी बुरे अभिप्राय से मुझसे मिलने आता था तो वह शक्ति का परिचय पाकर फिर कभी मेरे पास नहीं आता था।"

वास्तव में यह शक्ति जिसे असाधारण अतीन्द्रिय-शक्ति कहा जाता है, उन्हें स्वयं भगवान् रामकृष्ण ने सौंपी थी। बाद में अपनी साधना के माध्यम से स्वामी विवेकानन्द

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दे उपार्जित की थी। इसके अतिरिक्त भी भगवान् रामकृष्ण उनकी आजीवन सहायता करते रहे।

अपनी भाषण-शक्ति की चर्चा करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक शिष्य से कहा था—"अमेरिका के विभिन्न शहरों में जब मैंने भाषण देना प्रारंभ किया तब सप्ताह में बारह-बारह, तेरह-तेरह और कभी इससे भी अधिक भाषण देता था। मानसिक और शारीरिक परिश्रम से इतना थक जाता था कि कल किस विषय पर बोलूंगा, यह समझ नहीं पाता था। एक दिन इसी चिन्ता में परेशान हो उठा और नींद आ गयी। उस स्थिति में मैंने अनुभव किया कि कोई मेरे पास खड़ा होकर भाषण दे रहा है। उसमें कितने नये भावों तथा नयी कथाओं का उल्लेख है। मेरे लिए सभी बातें नयी थीं। जब मैं सोकर उठता तब उन्हीं बातों को स्मरण करता। कई बार ऐसी घटनाएँ हुईं। मेरी बगल के कमरे में रहनेवाले लोग अक्सर पूछते—'स्वामीजी, कल रात इतनी जोर जोर से किससे बातें करते रहे।' मैं उनके प्रश्नों को टाल जाता था। इस रहस्यमयी घटना के बारे में उन्हें क्या बताता ?"

उन दिनों मैडम एमा कालवे विश्व की सर्वश्रेष्ठ ओपेरा गायिका थी। सन् १८९४ में जिन दिनों स्वामीजी वहाँ थे, शिकागो के एक हाल में उसका एक कार्यक्रम था। प्रथम दृश्य में गाने के बाद उसका दम घुटने लगा। काफी अनुरोध करने पर दूसरी बार स्टेज पर आयी। लेकिन तीसरी बार आने का उसे साहस नहीं हुआ। उसे लगा जैसे उसके प्राण निकल जायेंगे। ऐसा क्यों हो रहा है, यह वह समझ नहीं पा रही थी। पर मैनेजर के विशेष अनुरोध पर पुनः स्टेज पर आयी। कार्यक्रम समाप्त कर जब वह ग्रीन रूम में गयी तब किसी ने उसे बताया कि उसकी एक मात्र पुत्री जलकर मर गयी है।

यह समाचार सुनते ही वह बेहोश हो गयी। होश में आने पर उसका मस्तिष्क विकृत हो गया। बचपन से जिद्दी, पति परित्यक्ता, वह अपनी एक मात्र पुत्री को संबल बनाकर अपने गम को भुला रही थी। अब ऐसे जीने से क्या लाभ ?

घर के पास बड़ी सी झील थी। वह एक बार वहाँ डूबने गयी तो लगा जैसे किसी ने पीछे से पकड़ लिया हो। तभी उसे याद आया कि पड़ोस की एक सहेली ने कहा था—"मेरे यहाँ एक भारतीय संत ठहरे हैं। इनके पास आओ। तुम्हें शांति मिलेगी।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहेली की सलाह उसे पसन्द नहीं आयी। दूसरे दिन पुनः आत्महत्या करने गयी तो रास्ता भूलकर स्वामीजी के पास पहुँच गयी। वहाँ मन कुछ शांत हुआ। स्वामीजी से बिना मुलाकात किये चली गयी। तीसरे दिन पुनः चक्कर काटती हुई सहेली के घर चली आयी। बैठक में आकर चुपचाप बैठ गयी। वह यह सोच रही थी कि सहेली आये तो उसे साथ लेकर उस संत से मुलाकात करूँ।

ठीक उसी समय बगल के कमरे से एक आवाज आयी––"इस कमरे में चली आओ माँ। मेरे पास चली आओ।"

मंत्रमुग्धा की भाँति एमा उस कमरे में चली गयी जहाँ स्वामी विवेकानन्द बैठे थे। एक कुर्सी पर उसके बैठते ही स्वामीजी एमा के जीवन की समस्त कुत्सित घटनाओं का वर्णन करने लगे। एमा अवाक् होकर उनकी ओर देखती रही। जिस व्यक्ति को जीवन में पहली बार देख रही हूँ, जिन घटनाओं की चर्चा मैंने कभी किसी से नहीं की, वे सारी बातें यह संन्यासी कैसे जान गया?

एमा ने विस्मय से पूछा––"ये सारी बातें आपको कैसे मालूम हुई?"

स्वामीजी ने कहा––"तुम मेरे सामने एक खुली हुई पुस्तक की भाँति बैठी हो। तुम्हारे बारे में किसी ने कुछ नहीं बताया। केवल तुम्हारा चेहरा देखकर तुम्हारे जीवन की सारी बातें कहता गया।"

काफी देर तक दोनों में बातें होती रहीं। एक प्रकार से स्वामीजी के संपर्क में आने के कारण एमा ने पुनर्जन्म प्राप्त किया। उसने एक दिन स्वामीजी के समक्ष आत्म-समर्पण करते हुए कहा––"मं पियार।" फ्रांसीसी भाषा में इसका अर्थ है––मेरे पिता।

स्वयं स्वामीजी ने अपनी पुस्तक में एमा का जिक्र किया है और एमा अपनी पुस्तक में स्वामीजी की अजस्र प्रशंसा कर चुकी है। जब दूसरी बार स्वामीजी अमेरिका गये तब वह उनके साथ मिस्र, टर्की, फ्रांस, ग्रीस आदि देशों की यात्रा करती रही। स्वामीजी के शरीर-त्याग करने के बाद कलकत्ता स्थित बेलुड़ मठ में आकर कहती रही––"मेरे पिता का प्रेमपूर्ण हृदय कितना विशाल था! कितने पवित्र थे वे! कितना आकर्षण था उनमें, कितनी मर्मस्पर्शी बातें करते थे, उनमें शिशु-सुलभ चपलता थी। उन्नत, उदार चरित्र था। अपूर्व तेजोमय मूर्ति थी और कितनी सुंदर आकर्षक विस्तृत दो उज्ज्वल आँखें थीं।"

स्वामीजी के संपर्क में आने के बाद एमा ने दर्शन एवं अध्यात्म का विस्तृत अध्ययन किया था। जितने दिनों तक वह स्वामीजी के साथ रही, उनकी अतीन्द्रिय शक्ति देखकर चकित रह जाती थी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसी प्रकार भगिनी निवेदिता भी स्वामीजी से प्रभावित होकर भारत चली आयी और यहाँ के स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेती रही। स्वामीजी अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति का प्रयोग बहुत कम करते थे।

जिन दिनों स्वामीजी लन्दन में थे, उन दिनों प्रोफेसर मैक्समूलर इनसे हुई बातचीत से काफी प्रभावित हुए और आगे चलकर उन्होंने भगवान् रामकृष्ण की जीवनी लिखी। स्वामीजी का मैक्समूलर पर कितना प्रभाव पड़ा था, इसका अंदाजा हम एक घटना से लगा सकते हैं।

लन्दन से कहीं जाने के लिए स्वामीजी स्टेशन पर आये। गाड़ी आने में देर थी। सहसा तेज आँधी के साथ-साथ बरफ गिरने लगी। देखते-देखते मौसम खराब हो गया। ठीक इसी समय वहाँ प्रोफेसर मैक्समूलर आ गये।

प्रोफेसर साहब को देखकर स्वामीजी ने पूछा––"आप यहाँ कैसे ?"

––"आप जा रहे हैं, इसलिए विदा देने चला आया।"

––"उम्र को देखते हुए ऐसे मौसम में यहाँ आपको नहीं आना चाहिए था। बेकार आपने कष्ट किया।"

गदगद स्वर में प्रोफेसर ने कहा––"श्री रामकृष्ण के योग्य शिष्य का दर्शन करना मेरे लिए सौभाग्य की बात है।"

इस मर्मस्पर्शी बात को सुनकर स्वयं स्वामीजी अभिभूत हो उठे। विदेश में एक असाधारण विद्वान् इतना स्नेह और आदर दे रहा है। इस निश्छल प्रेम की तुलना किससे हो सकती है ?

स्वामीजी को वक्तृता तथा ज्ञान से प्रभावित होकर मिस मूलर, मिस नोबेल, मिस्टर स्टार्डी आदि अनेक लोग उनके साथ मिलकर भारतीय वेदांत का प्रचार करने लगे। चारों ओर स्वामीजी की धूम मच गयी।

श्रीमती एमा कालवे ने अपनी जीवनी में लिखा है––"मेरे सामने स्वामीजी पादरियों के साथ धर्म-चर्चा किया करते थे। मैं चुपचाप वार्तालाप सुना करती थी। प्रसिद्ध तात्त्विक और पंडित फादर लयसन से स्वामीजी की बातें होती रहती। आश्चर्य की बात है कि स्वामीजी ईसाई धर्म ग्रंथों की ऐसी ऐसी बातों का विवरण सहज ही प्रकट कर दिया करते जिनका ज्ञान ईसाई धर्म के उस जाने-माने फादर को भी कदापि नहीं था।

उन्होंने स्वामीजी से पूछा––"आपको इन बातों की जानकारी कैसे हो गयी ?"

स्वामीजी ने कहा––"पिछले दस हजार वर्षों से हमारे वेदों के शेषांशों की पूर्ति पुरुषानुक्रम से ऋषि-मुनि-गण करते रहे। संप्रदाय के अध्यक्ष अपने जीवन का इतिवृत्त, अध्ययन और अनुभूतियों द्वारा लिख गये हैं। उन लोगों के देहांत के बाद श्रेष्ठ ज्ञानी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्तियों ने उनका संशोधन-अध्ययन किया। कुछ लोगों ने एक-दो पृष्ठ में अपने विचार उसमें संलग्न किये। शायद किसी-किसी की पुस्तकें उपनिषदों की श्रेणी में मान ली गयीं। इस दृष्टि से हमारे शास्त्रों का भंडार विशाल है और पृथ्वी में सबसे बड़ा है।"

× × ×

स्वदेश आकर वे मद्रास गये। जिस दिन वे हवड़ा स्टेशन पर गाड़ी से उतरे, उस दिन उनकी गाड़ी को कलकत्ते के युवक खींचने लगे। देशवासियों ने अपने नरेन्द्र को, अपने विवेकानन्द को और अपनी मातृभूमि के रत्न को पहचान लिया था। अपनी श्रद्धा तथा सम्मान दिखाने के लिए उनकी गाड़ी में अपना कंधा लगाया था। आज तक ऐसा सम्मान किसी भी अन्य व्यक्ति को नहीं मिला।

स्वामीजी संथालों को बहुत चाहते थे। यहाँ आकर जब बेलुड़ में मठ बनवाने लगे तब अधिकतर संथाल मजदूर काम करते रहे। एक दिन पूरी-तरकारी उन सबको खिलायी। इसके बाद उन्होंने कहा--"ये लोग मेरे नारायण हैं। आज मैंने नारायण को भोग दिया।"

अपनी दृढ़ शक्ति का परिचय देते हुए उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा था--आज के संसार में केवल दुनियादारी बाकी रह गयी है। लेकिन जो साहसी है, ज्ञानी है, उन्हें ऐसी दुनियादारी की बातों से घबराना नहीं चाहिए। जगत चाहे जो कहे, उसको क्या परवाह करनी ? मैं अपना काम करता चला जाऊँगा। अमुक क्या कहता है, अमुक क्या लिखता है ? अगर ऐसी बातों पर ध्यान दोगे तो कुछ नहीं कर सकोगे। क्या यह श्लोक तुम लोगों ने कभी सुना है--

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याययात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

--नीतिनिपुण स्तुति करे या निन्दा, लक्ष्मी कृपालु हों या न हों, देहांत आज हो या युग भर बाद, धीर न्याय के पथ से कभी विचलित नहीं होते। कितने ही तूफान पार करने के बाद मनुष्य शांति के राज्य में पहुँचता है। जो जितना बड़ा हुआ, उसके मार्ग में उतनी ही कठिनाई आयी। परीक्षा रूपी कसौटी पर घिसने के बाद जगत में उसे बड़ा कहकर स्वीकार किया। जो डरपोक होते हैं, वे समुद्र की लहरों को देखकर ही किनारे पर नाँव बाँध देते हैं। लेकिन जो वीर साहसी होते हैं, वे किसी बाधा पर ध्यान नहीं देते। वे अपना इष्ट लाभ करके ही दम लेते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संक्षेप में विवेकानन्द ने अपनी राम कहानी इन शब्दों में व्यक्त की है। केवल उनतालीस वर्ष की उम्र में वे जितने कार्य कर गये, जो विचार दे गये और संपूर्ण विश्व को जिस ढंग से आकृष्ट किया, पिछले दो शताब्दियों में किसी भी व्यक्ति ने नहीं किया। उनकी शक्ति से प्रेरित होकर इंग्लैण्ड-अमेरिका आदि देशों में अनेक मठ-मंदिर बनवाये गये, जहाँ विश्व-बंधुत्व की शिक्षा दी जा रही है। मानव को नारायण मानकर उसकी सेवा की जा रही है।

सहसा शिष्यों ने अनुभव किया कि अब स्वामीजी बराबर उदासीन होते जा रहे हैं। पहले की तरह प्रत्येक कार्य में उत्साह नहीं दिखा रहे हैं। अगर किसी काम के बारे में कोई सलाह लेने जाता तो तुरत कह देते––"मुझसे कोई मतलब नहीं। अब मैं इन झंझटों से अलग रहना चाहता हूँ।"

इस प्रकार के उत्तर सुनकर गुरु-भाइयों को शंका हुई। लोगों को याद आया कि एक बार गुरुदेव रामकृष्ण ने कहा था––"जब नरेन्द्र को अपने स्वरूप का ज्ञान हो जायगा तब वह शरीर नहीं रखेगा।"

तो क्या नरेन्द्र को अपने स्वरूप का ज्ञान हो गया? एक दिन एक गुरु भाई ने साहस के साथ पूछा––"स्वामीजी, आप कौन हैं, क्या इस बात को जान गये हैं?"

स्वामीजी ने कहा––"जान गया हूँ।"

अब लोग समझ गये कि पिछले कुछ दिनों से अचानक स्वामीजी के स्वभाव में क्यों परिवर्तन हुआ है और अब पहले की तरह उत्साह से वे काम क्यों नहीं करते।

देहत्याग के एक सप्ताह पूर्व उन्होंने पंचांग मँगवाकर देखा और उसे अपने पास रख लिया। यहाँ तक कि राखाल महाराज, निवेदिता आदि किसी से भी विशेष बात नहीं करते थे।

देहत्याग के तीन दिन पूर्व मठ के अहाते में टहलते हुए अपने एक शिष्य को एक विशेष स्थान दिखाकर कहा––"जब मेरा शरीर छूट जाय तब यहीं दाह-संस्कार करना।"

शुक्रवार, ४ जुलाई, सन् १९०२ को भोर में स्वामीजी जाग गये। सबेरे आठ बजे रामकृष्ण देव के मंदिर में जाकर वे सभी दरवाजे-खिड़कियाँ बंद करके ध्यान करने लगे। दोपहर ११ बजे मंदिर से बाहर निकले। इसके बाद एक से चार बजे तक छात्रों को व्याकरण पढ़ाते रहे। शाम को स्वामी प्रेमानन्द के साथ बेलुड़ के बाजार में घूमने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गये। वहाँ से वापस आकर अपने कमरे में खड़े हो गये। खिड़की के उस पार भागीरथी कल-कल ध्वनि करती हुई बह रही थी।

कुछ देर बाद अपने सेवक को बुलाकर उसे जप करने का निर्देश दिया और स्वयं भी बिछावन पर बैठकर जप करने लगे। जप करते-करते वे लेट गये। काफी देर बाद उन्होंने एक गहरी साँस ली। एकाएक उनका हाथ काँपा। इसके साथ ही उनका सिर एक ओर लुढ़क गया। भ्रूमध्य में उनकी दृष्टि निबद्ध थी। चेहरे से अपूर्व प्रकाश प्रकट हो रहा था। उस समय रात के ९ बजकर १० मिनट हुए थे।

दूसरे दिन चिता के पास अनेक गुरुभाई, शिष्य खड़े थे। जब चिता में आग लगायी गयी तब स्वामी निरंजनानन्द ने कहा—"नरेन चला गया।"

गिरीश घोष ने कहा—"चले नहीं गये, चोला बदल लिया।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

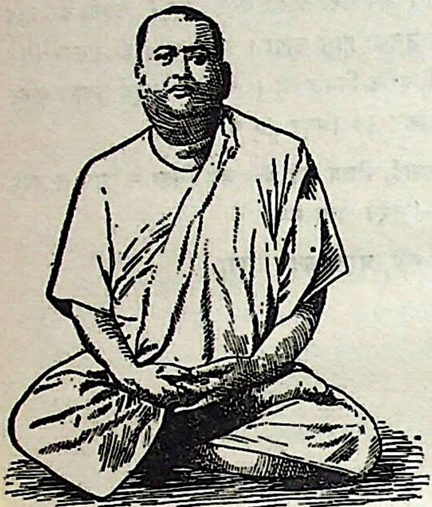

स्वामी ब्रह्मानन्द

रात ९ बजे आफिस से लौटते ही केदारनाथ बसु ने अपनी पत्नी से कहा—"मुझे तुरत बेलुड़ जाना है। खाने-पीने में देर हो जायगी। खाना नहीं खाऊँगा।"

पत्नी ने कहा—"कैसी बात करते हो? सबेरे खाकर गये हो और अब आये हो। खाना खाकर जहाँ जाना हो जाओ।"

केदारनाथ ने कहा—"कह तो दिया कि भोजन करने की इच्छा नहीं। तुम लोग खाना खा लो।"

इतना कहते ही वे तेजी से बाहर निकले। अचानक इतनी रात को बेलुड़ क्यों जा रहे हैं, यह भी नहीं पूछ सकी। सबेरे ९ बजे खाकर जाते हैं। दोपहर को एक कप चाय पीते हैं और फिर रात को ९ बजे तक लौटते हैं।

केदारनाथ बसु रैली ब्रदर्स कम्पनी में क्लर्क हैं। बेलुड़ मठ के अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द के शिष्य हैं। स्वामीजी को लोग प्रायः राखाल महाराज या 'महाराजा' कहते हैं। आज आफिस से लौटते वक्त केदारनाथ ठीक थे। सहसा मार्ग में न जाने क्यों उनका मन महाराजा का दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठा। घर आते-आते जैसे कोई तीव्र-शक्ति उन्हें तुरत बेलुड़ चलने के लिए प्रेरित करने लगी। घर पर सूचना देना आवश्यक था वर्ना पत्नी रात भर जागती और घबराती रहती।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अहिरी टोला घाट पर आकर केदारनाथ ने देखा——चारों ओर सन्नाटा है। एक भी मल्लाह नहीं। अब सवाल यह उठा कि ऐसी हालत में वे बेलुड़ कैसे जाएँ। नाव के अलावा वहाँ जाने का अन्य कोई साधन नहीं। इसी ऊहापोह में थे कि उस अंधेरे में सामने से एक आदमी आता दिखाई दिया। उन्होंने सोचा——शायद कोई मल्लाह है। उस व्यक्ति के पास आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यह अन्य कोई नहीं, उन्हीं के गुरु भाई सुरेन्द्रनाथ सेन हैं।

उन्हें देखते ही सुरेन्द्र बाबू ने विस्मय से पूछा——"आप इस वक्त यहाँ कैसे ?"

केदारनाथ ने कहा——"आज आफिस से लौटते वक्त न जाने क्यों महाराजा को देखने के लिए मन बड़ा व्याकुल हो गया। घर पर भी मन न लगा। न जाने कौन सी शक्ति यहाँ तक खींच ले आयी। लेकिन आप कैसे ?"

सुरेन्द्र बाबू ने हँसकर कहा——"यही हाल मेरा भी हुआ। लगता है कि महाराजा अपने पास बुलाना चाहते हैं वर्ना आधी रात को यह सनक हम पर क्यों सवार होती ? चलिये, एक से दो भले।"

मुँहमाँगा किराया देने पर एक मल्लाह राजी हुआ। बहाव के विपरीत नाव खेने में मल्लाह को परेशानी हो रही थी। समय काफी लग रहा था। आधी रात के बाद नाव बेलुड़ मठ के किनारे लगी। ज्योंही ये लोग नाव से उतरे त्योंही दो नावें और भी किनारे लगी। एक नाव पर डाक्टर कांजिलाल और दूसरे पर काली बाबू थे। ये दोनों श्री श्रीमाँ (शारदा देवी) के शिष्य हैं।

इतनी रात गये सभी एक-दूसरे को देखकर अवाक् रह गये। सभी का कहना था कि पता नहीं क्यों महाराजा का दर्शन करने के लिए मन व्याकुल हुआ और चले आये।

अब चारों व्यक्ति यह सलाह करने लगे क्या इस वक्त महाराजा का दर्शन होगा। उन्हें इस वक्त जगाया नहीं जा सकता। इधर उनके दर्शन के बिना मन शांत नहीं होगा। आखिर ऐसा क्यों हुआ ? इसमें क्या रहस्य है ?

इन्हीं बातों की चर्चा करते हुए चारों व्यक्ति घाट की सीढ़ियों को पार कर खुले मैदान में आये। अचानक सभी की निगाहें दो तल्ले पर खड़े महाराजा पर जा टिकी।

महाराजा जाग रहे हैं ? यह दृश्य देखते ही चारों दौड़े हुए भवन के पास आये। महाराजा ने कहा——"सीढ़ी का दरवाजा खुला हुआ है। तुम लोग ऊपर चले आओ।"

सभी ऊपर आये। महाराजा जहाँ खड़े थे, वहीं उनके पास जमीन से माथा टेककर सभी ने प्रणाम किया। महाराजा का दर्शन पाकर सभी गदगद हो उठे। यह एक अद्भुत घटना थी।

महाराजा ने अपने कमरे की ओर निर्देश करते हुए कहा——"वहाँ चार व्यक्तियों का भोजन रखा है। जाओ, खाकर तुम लोग सो जाओ।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सभी लोग भोजन करने के बाद अतिथि-गृह में जाकर सो गये। दूसरे दिन पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि महाराजा ने शाम को अपने सेवक को बुलाकर कहा था--"मेरे कमरे में चार व्यक्तियों का भोजन ढककर रख देना।"

इसका अर्थ यह हुआ कि लोग आधी रात को आयेंगे, यह बात महाराजा जानते थे। लेकिन आगतों को यह नहीं मालूम हो सका कि आखिर उनका मन एक ही दिन, एक ही समय में महाराजा के दर्शन के लिए व्याकुल क्यों हो उठा था?

× × ×

महाराजा का एक भक्त था। इस भक्त का एक मात्र पुत्र क्लब जाता और वहाँ शराब पीता था। जब वह युवक बलराम मंदिर आता तब वह इस बात की प्रतीक्षा करता कि महाराज कब अकेले हैं, उस समय उन्हें प्रणाम कर चुपचाप चला जाता। कभी कुछ नहीं कहता था।

महाराज अंतर्यामी थे। वे युवक के गुण-दोषों को जान गये थे। एक दिन उन्होंने उस युवक से कहा--"तू जो कुछ कर रहा है, उसे करता रह। मैं तुझे मना नहीं करना चाहता। लेकिन एक बात है कि जो कुछ कर रहे हो उसे करने के पहले केवल एक बार मुझे स्मरण कर लेना। बस, इससे सब ठीक हो जायगा।"

युवक को समझते देर नहीं लगी कि महाराजा का इशारा किस ओर है। इस वार्तालाप के कुछ दिनों बाद महाराजा का तिरोभाव हो गया। उस युवक ने बलराम मंदिर में जाना तो बन्द कर दिया, पर महाराजा की चेतावनी उसे याद रही।

प्रत्येक शनिवार की शाम को वह क्लब में जाता। जहाँ नाच, गाना और शराब के दौर चलते थे। एक दिन अचानक शराब का गिलास उठाते ही उसे महाराज की चेतावनी याद आ गयी और उसने उन्हें स्मरण किया।

इसके बाद ज्योंही गिलास उसने मुँह के पास लाया तो देखा--भीतर शराब के ऊपर महाराजा का चेहरा तैर रहा है। उसे लगा जैसे महाराजा कह रहे हैं--"जो कुछ कर रहा हैं, कर। पर करने के पहले हमेशा एक बार मुझे याद कर लेना।"

उसने गिलास नीचे रख दिया। मन उखड़ गया। यह देखकर उसके मित्र उस पर दबाव डालने लगे। लाचारी में गिलास खाली करके वापस चला आया। इसके बाद वाले शनिवार को महाराजा का स्मरण करते ही पुनः वही दृश्य, वही बात हुई तो बिना पिये वापस चला आया। तीसरी बार जब पुनः महाराजा का चेहरा दिखाई दिया तो गिलास फेंककर चला आया। इसके बाद फिर कभी क्लब नहीं गया।

× × ×

बशीरहाट महकमा के अन्तर्गत शिकरा गाँव के जमींदार श्री आनन्द मोहन घोष थे। २१ जनवरी, सन् १८६३ को रात को १ बजे घोष महाशय को प्रथम पुत्र की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राप्ति हुई। लड़के का नाम रखा गया--राखाल। बालक अभी अपने जीवन का पाँचवाँ बसन्त देख पाया था कि सहसा उसकी माता का देहांत हो गया। बच्चा अवहेलना का शिकार न बने, इसलिए आनन्द मोहन ने पुनर्विवाह किया। विमाता हेमांगनी देवी की गोद में पलकर राखाल बड़ा हुआ।

राखाल के प्रति आनन्द मोहन का असीम स्नेह था। वे शिक्षा के लिए लड़के को दूर नहीं भेजना चाहते थे। काफी विचार-विमर्श करने के बाद उन्होंने घर के पास एक स्कूल स्थापित कर दिया। इसी स्कूल में राखाल की शिक्षा प्रारंभ हुई। स्वभाव से सौम्य होने के कारण कभी किसी मास्टर ने मारा नहीं।

शिक्षा के अलावा राखाल खेल-कूद में भी बराबर भाग लेता रहा। इसके अलावा राखाल में एक विशेषता अपने आप में पैदा हो गयी थी। अपने मित्रों को लेकर वह गाँव के बाहर स्थित काली मंदिर में जाता और पूजा करता था। बँगाल के जमींदारों की तरह राखाल के यहाँ भी प्रति वर्ष दुर्गा-पूजा होती थी। पूजा के समय वह पुरोहित के पीछे बैठ जाता और देवी के ध्यान में मग्न हो जाता था।

सन् १८७५ ई० में उच्चशिक्षा दिलाने के लिए आनन्द मोहन अपने साथ राखाल को लेकर कलकत्ता आये। उसे यहाँ उसके ननिहाल में रख दिया गया। यहीं उसका परिचय नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) से हुआ। नरेन्द्र चार क्लास ऊपर पढ़ता था, पर उसके अद्भुत आकर्षण ने राखाल को प्रभावित किया। दोनों एक साथ व्यायाम-शाला जाते। वहाँ कुश्ती लड़ते, व्यायाम करते और अगले दिन के लिए कार्यक्रम बनाते। यहाँ तक कि दोनों ही एक साथ ब्रह्म-समाज के सदस्य बने। लड़के के इन कार्य कलापों की सूचना पाकर आनन्द मोहन ने उसका विवाह विश्वेश्वरी नामक लड़की से कर दिया।

यह विवाह राखाल के लिए वरदान प्रमाणित हुआ। राखाल का बड़ा साला मनमोहन दक्षिणेश्वर स्थित परमहंस रामकृष्ण देव का कट्टर भक्त था। उनका नित्य दर्शन करने जाता था। एक दिन मनमोहन के साथ वह भी परमहंस देव के दर्शन करने चला आया। सच तो यह है कि वह अपने आने की पूर्व सूचना देकर आया था।

कहा जाता है कि राखाल देव-पुत्र था। उसके आगमन के कुछ दिन पूर्व रामकृष्ण देव ने भावावस्था में देखा--बरगद के पेड़ के नीचे एक बालक खड़ा है। इस दृश्य को देखते ही उनके मन में शंका उत्पन्न हो गयी। आखिर ऐसा दृश्य मैंने क्यों देखा ? इसका क्या अर्थ है ?

इस सम्बन्ध में जब अपने भांजे रामलाल से चर्चा की तो उसने कहा--"मामा, अब तुम बाप बनने वाले हो। शायद इसीलिए ऐसा दृश्य देखा।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रामकृष्ण देव ने चौंककर कहा--"क्या कह रहा है ? अरे पगले, मैं तो मातृ-योनिवाला हूँ। मैं कैसे बाप बन सकता हूँ ?"

इस घटना के कई दिनों बाद रामकृष्ण देव ने पूजा करने के बाद देवी मूर्ति से कहा- "विषयी व्यक्तियों से बात करते-करते मेरी जीभ जल गयी।"

जगन्माता ने कहा--"चिंता करने की जरूरत नहीं। बहुत जल्द त्यागी भक्तों की भीड़ तुम्हारे यहाँ आने वाली है।"

इस घटना के बाद एक दिन जगन्माता उनकी गोद में एक बालक को रखती हुई बोलीं--"यही है, तुम्हारा लड़का।"

रामकृष्ण देव ने चौंककर पूछा--"यह मेरा लड़का कैसे हो गया ?"

जगन्माता ने कहा--"यह अपना निजी पुत्र नहीं, मानस-पुत्र है।"

जिस दिन राखाल पहले पहल आया, उसी दिन सवेरे रामकृष्ण देव ने देखा--गंगा के ऊपर शतदल कमल विकसित हैं। चारों ओर अपूर्व शोभा है। श्रीकृष्ण भगवान् एक अपरूप बालक का हाथ पकड़कर कमलों के ऊपर नृत्य कर रहे हे। इस दृश्य को देखकर रामकृष्ण देव भाव विभोर हो गये।

ठीक इसी समय राखाल उनके सामने आकर खड़ा हो गया। रामकृष्ण देव ने आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखा--"अरे, यह तो वही बालक है जिसे मैंने बरगद के पेड़ के नीचे खड़ा देखा था। इसी को जगन्माता ने मेरी गोद में बैठाया था। आज सवेरे इसी बालक को श्रीकृष्ण के साथ नृत्य करते देखा था।"

कुछ देर तक रामकृष्ण देव तीक्ष्ण दृष्टि से राखाल का निरीक्षण करते रहे।

इसके बाद मनमोहन की ओर देखते हुए उन्होंने कहा--' सुंदर आधार।"

बाद में राखाल से पूछा--"क्या नाम है तुम्हारा ?"

राखाल ने कहा--"राखालचन्द्र घोष।"

इस नाम को सुनते ही रामकृष्ण देव भावाविष्ट होकर सोचने लगे--वही नाम राखाल (श्रीकृष्ण के सखा), ब्रज का राखाल (गाय चरानेवाला)। प्रकट रूप में उन्होंने कहा--"फिर आना।"

जिस प्रकार राखाल को देखते ही रामकृष्ण देव भाव विभोर हो गये थे, ठीक उसी प्रकार उनके प्रथम दर्शन से राखाल के हृदय में उथल-पुथल मच गयी थी। ये कौन हैं ? क्या ये महापुरुष हैं ? इनकी आँखों में जैसा माधुर्य है, ऐसा अन्य लोगों में नहीं है।

रामकृष्ण देव के आकर्षण ने राखाल को इतना प्रभावित किया कि एक दिन वह अकेला दक्षिणेश्वर चला आया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसे देखते ही आकुल भाव से रामकृष्ण देव ने पूछा--"तुझे यहाँ आने में इतनी देर क्यों हुई ?"

दोनों एक-दूसरे को अपलक दृष्टि से देखते रहे। इस घटना के बाद राखाल को जब मौका मिलता तब वह दक्षिणेश्वर चला आता था। उन दिनों के बारे में श्री परमहंस देव ने कहा है--"प्रारंभ में राखाल जब मेरे पास आता था तब चार साल के अबोध शिशु की तरह व्यवहार करता था। दौड़कर मेरी गोद में बैठ जाता था। जल्दी कहीं जाना नहीं चाहता था। मैं प्रायः इसे मक्खन या खीर खिलाया करता था। कंधे पर बैठाकर घुमाया करता था। इस प्रकार का बचपना करने में इसे कोई संकोच नहीं होता था।"

एक बार नरेन्द्रनाथ और राखाल के स्वभाव का तुलनात्मक परिचय देते हुए रामकृष्ण देव ने कहा था--"राखाल साकार का प्रेमी है और नरेन्द्र निराकार का।"

उन दिनों नरेन्द्र और राखाल एक साथ ब्रह्म समाज में जाते थे। फिर भी राखाल नरेन्द्र के व्यक्तित्व से डरता रहता था। नरेन्द्र से किसी भी विषय पर बहस करने से कतराता था। राखाल की इस कमजोरी को रामकृष्ण देव समझ गये।

मौका पाते ही एक दिन रामकृष्ण देव ने नरेन्द्र से कहा--"देख, अब आगे से राखाल को कुछ मत कहना। तेरी शक्ल देखते ही वह डर से पीला पड़ जाता है। अब अगर उसका साकार में विश्वास हो गया है तो क्या किया जाय। तेरी तरह सभी निराकार में विश्वास नहीं कर पाते।"

राखाल को अक्सर दक्षिणेश्वर जाते, साधुओं की संगत करते देख आनन्द मोहन का माथा ठनका। गृहस्थ लड़का है, विवाहित है। कमाने-धमाने की फिक्र छोड़कर किस चक्कर में फंस गया। क्या वैरागी बनने का भूत सवार हुआ है? एक दिन जब दक्षिणेश्वर से वापस लौटा तब उसे एक कमरे में बन्द कर दिया गया।

इधर अपने स्नेह-पात्र को लगातार कुछ दिनों तक न देख पाने के कारण रामकृष्ण देव व्याकुल हो उठे। मंदिर में जाकर जगन्माता के सम्मुख प्रार्थना करने लगे— "राखाल को बिना देखे मुझे अपार कष्ट हो रहा है। माँ, मेरे राखाल को वापस बुला दो।"

जगन्माता अपने भक्त की करुण पुकार सुनकर विचलित हो उठीं। एक दिन राखाल को अपने पास बैठाकर आनन्द मोहन एक मुकदमें की मिसिल देखने लगे। धीरे-धीरे उसे देखने में खो गये। मौका देखकर राखाल दबे पाँव बाहर निकला और सीधे दक्षिणेश्वर पहुँच गया।

इधर इस मुकदमे के पीछे आनन्द मोहन बुरी तरह उलझ गये। उन्हें दक्षिणेश्वर आने का अवसर नहीं मिला। मुकदमा काफी जटिल था और अंत में अप्रत्याशित रूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से जीत गये । बाद में अवकाश पाने पर दक्षिणेश्वर आये । मुकदमा जीत जाने के कारण एक हद तक वे उद्वेग-हीन हो गये थे ।

आनन्द मोहन को आते देख रामकृष्ण देव समझ गये कि राखाल के पिता आ रहे हैं । उन्होंने जब राखाल से कहा तब वह भय के कारण मकान के भीतर जाकर छिप गया ।

यह देखकर रामकृष्ण देव ने कहा––"छिप क्यों रहा है ? माता-पिता ईश्वर के बराबर होते हैं । उन्हें भक्ति पूर्वक प्रणाम करना चाहिए । पिताजी के आने पर उन्हें प्रणाम करना । डरने की कोई बात नहीं है ।"

आनन्द मोहन जब आये तब राखाल ने उन्हें नम्रता पूर्वक प्रणाम किया । रामकृष्ण देव उसके पिता के निकट उनके पुत्र की प्रशंसा करने लगे ।

सच तो यह है कि रामकृष्ण देव के पास आते ही प्रत्येक व्यक्ति के चित्त में तुरत परिवर्तन हो जाता है । ठाकुर के यहाँ अपने पुत्र को प्रसन्न चित्त रहते देख आनन्द मोहन को संतोष हुआ । वे आये थे––अपने साथ राखाल को ले जाने के लिए, पर इस वक्त ठाकुर के प्रभाव के कारण उनकी वह इच्छा अपने आप दब गयी ।

इस घटना के बाद अपने पुत्र को देखने के लिए आनन्द मोहन अक्सर दक्षिणेश्वर चले आते थे । एक बार रामकृष्ण देव ने उनसे पूछा––"अगर आप कहिये तो मैं राखाल को यहाँ आने के लिए मना कर दूँ ।"

आनन्द मोहन इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं थे । क्या जवाब दें ? बड़े पेशोपेश में पड़ गये । उन्होंने यह भी देखा कि इस संत के निकट नगर के अनेक गण-मान्य लोग बराबर आ रहे हैं । यहाँ अगर लड़का रह गया तो इन लोगों से परिचय बढ़ेगा । इन सारी बातों पर विचार करने के बाद आनन्द मोहन ने कहा––"राखाल तो आपका लड़का है । आपके यहाँ रखने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है । एक कष्ट देना चाहता हूँ, कभी-कभी इसे घर भेज दिया करें ।"

इस प्रकार दो वर्ष बीत गये । राखाल का रंग-ढंग उनकी सास को पसन्द नहीं आ रहा था । उन्होंने इस बारे में अपने समधी आनन्द मोहन से शिकायत की, पर कोई लाभ नहीं हुआ । पता नहीं, दक्षिणेश्वर के पागल बाबा ने दामाद को कैसे वश में कर लिया है । दिन-रात वहीं पड़ा रहता है ।

आखिर एक दिन अपनी बेटी को लेकर वे दक्षिणेश्वर मंदिर आयीं । बहू को देखते ही रामकृष्ण देव के मन में विचार उठा कि कहीं इसके कारण उनके राखाल में ईश्वर-भक्ति की कमी तो नहीं होगी ?

अपने संशय को दूर करने के लिए रामकृष्ण देव बहू को पास बुलाकर उसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शारीरिक लक्षण देखने लगे। थोड़ी देर बाद वे समझ गये कि घबराने की कोई बात नहीं है। बहू में देवी-शक्ति है। स्वामी के धर्म-पथ पर काँटे नहीं बिछायेगी।

इतना जान लेने के बाद उन्होंने कहा––"इसे माताजी (शारदा माँ) के पास ले जाओ। उनसे कहना कि बहू का मुँह रुपये देकर देखें।"

ठाकुर अपने राखाल को साक्षात् श्रीकृष्ण समझते थे, इसीलिए उसे अपने हाथ से खिलाते थे। पास में सुलाते थे। अगर उसे कोई परेशान करता तो नाराज हो जाते थे। दूसरी ओर राखाल के सभी अवगुणों को नजर अन्दाज कर देते थे।

एक बार ठाकुर को पान खाने की इच्छा हुई। उन्होंने कहा––"जरा एक पान लगाकर ले आ।"

राखाल ने तुरत उत्तर दिया––"मुझे पान लगाना नहीं आता।"

ठाकुर ने हँसकर कहा––"इसमें कौन सा कमाल है जो तुझसे नहीं होगा?"

राखाल ने उत्तर दिया––"देखिये जनाब, यह सब बखेड़ा मुझसे नहीं होगा।"

इतना कहने के बाद वह रामकृष्ण के सामने से हट गया। ठाकुर उसके इस भोलेपन को देखकर हँस पड़े। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने राखाल को सिर चढ़ा रखा था। जब कभी कोई गलती करता तो उसे डाँटते भी थे।

एक बार मंदिर में एक पैसा गिरा मिला। उसने सोचा कि इसे किसी भिखमंगे को दे दूँगा। राखाल ने अपनी इस इच्छा को रामकृष्ण देव के सामने प्रकट किया। इतना सुनते ही रामकृष्ण देव बिगड़ उठे––"जो आदमी मछली नहीं खाता, उसे मछली बाजार में नहीं जाना चाहिए। जब तुझे पैसे की जरूरत नहीं तब तू क्यों उसे उठाने गया?"

ठाकुर के बिगड़ने पर वह डर गया। राखाल का विश्वास था कि ठाकुर उसे बहुत प्यार करते हैं। उसके अनेक अपराधों को माफ कर देते हैं। यहाँ तक कि उसकी गलती पर अगर कोई कभी डाँटता है तो वे राखाल का पक्ष लेते हुए कहते हैं––"अरे भाई, जाने दो। छोटा बच्चा है, उसे इतना ज्ञान नहीं है।"

ठाकुर के पास उनके भक्त बराबर आते थे जो उनके निर्देश पर जप-ध्यान आदि करते थे। वे अपनी अनुभूति की चर्चा किया करते थे। इन सभी बातों को सुनते रहने के कारण राखाल के मन में आया कि मैं इतने दिनों से ठाकुर की सेवा कर रहा हूँ, पर मुझे इन लोगों की तरह अनुभूति क्यों नहीं होती?

एक दिन ठाकुर को तेल लगाते समय राखाल ने अपने मन की बात प्रकट की। ठाकुर इस बात से परिचित थे कि अभी राखाल के लिए वह समय नहीं आया है जिसके लिए वह कह रहा है। फलतः ठाकुर ने उसे डाँट दिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संतान जब अधिक दुलारु हो जाती है तब वह जिद्दी हो जाती है। तनिक सी बात पर रूठ जाती है। ठाकुर के बिगड़ने पर वह नाराज होकर मंदिर से चल पड़ा।

मंदिर के दरवाजे के पास आते-आते उसके पैर अपने आप रुक गये। लाख कोशिश करने पर भी आगे बढ़ नहीं रहे थे। लाचारी में वह वहीं बैठ गया। ठीक इसी समय रामलाल दादा आये और अपने साथ उसे लेकर भीतर आ गये।

ठाकुर के पास आते ही उन्होंने कहा--"क्यों रे, रूठकर भाग रहा था न? भाग सका? तू तो बेकार नाराज हो गया। कोई भी काम हो, वह समय पर होता है।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद रामकृष्ण देव का पैर दबाते-दबाते राखाल अचानक भावाविष्ट हो गया। बाद में रामकृष्ण देव ने भक्तों से कहा था--"देखो, यह स्थान देख रहे हो न। एक दिन मेरा पैर दबाते-दबाते राखाल प्रथम बार भावाविष्ट हो गया था। कमरे के भीतर पंडितजी भागवत-पाठ कर रहे थे। उसे सुनते-सुनते वह प्रायः सिहर उठता था।"

× × ×

भाव-समाधि होने पर भी राखाल अतृप्त रह गया। असल में वह रामकृष्ण की सभी प्रवृत्तियों का आकांक्षी था। वह चाहता था ठाकुर की तरह उसे भी देवी का दर्शन हो। एक दिन जब वह भाव-समाधि में था तभी उसके पिता आ गये।

उन्हें देखते ही ठाकुर ने आनन्द मोहन से कहा--"देखिये, देखिये। राखाल का चेहरा कितना सुन्दर है। इस वक्त वह भावाविष्ट है। जरा उसके मुंह को देखिये। ओंठ कैसे हिल रहे हैं। अंतर में वह भगवान् का नाम ले रहा है। भले ही गृहस्थ घर का लड़का है तो क्या हुआ। चना अगर कूड़े में रहेगा तब भी वहाँ पौधे के रूप में पैदा हो जायगा।"

एक बार राखाल ने ठाकुर से शिकायत करते हुए कहा--"उन लोगों की तरह मुझे भी दर्शन क्यों नहीं होता?"

ठाकुर ने कहा--"जरा मन लगाकर जप-ध्यान करो तब होगा न।"

कुछ दिनों बाद एक बार राखाल ठाकुर के साथ मंदिर में गया। दोनों व्यक्ति वहाँ अलग-अलग कमरे में बैठकर जप करने लगे। सहसा राखाल ने देखा कि मंदिर के गर्भ गृह से एक अपरूप प्रकाश प्रकट हुआ और क्रमशः दरवाजे को पार करता हुआ उसकी ओर आ रहा है। इस दृश्य को देखते ही वह बुरी तरह डर गया। वह दौड़कर उस कमरे में चला आया जहाँ ठाकुर बैठे जप कर रहे थे।

उनसे लिपटकर उस दृश्य का वर्णन करने लगा। सारी बातें सुनने के बाद ठाकुर ने कहा--"एक ओर कहता है कि तुझे दर्शन-वर्शन नहीं होता और दूसरी ओर जब कुछ देखता है तब डरकर भाग आता है। अगर यही हालत रही तो कैसे काम चलेगा?"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ दिन बाद एक दिन ठाकुर ने प्रसन्न भाव से कहा--"ले, यह है तेरा इष्ट और मंत्र।"

ठाकुर से इष्ट-मंत्र पाकर राखाल खुशी से नाच उठा। बाद में जप करने पर उसे इष्ट के दर्शन भी हुए। एक दिन अजीब घटना हुई। काफी प्रयत्न करने पर भी उस दिन इष्ट के दर्शन नहीं हुए। खिन्न मन से वह आसन से उठकर खड़ा हो गया।

ठीक इसी समय ठाकुर आ गये। आसन छोड़ने का कारण पूछने पर राखाल ने कारण बताया। सारी बातें सुनने के बाद ठाकुर मंत्र की आवृत्ति करने लगे। बाद में राखाल की जीभ पर तीन रेखाएँ उन्होंने खींच दी।

इस कार्यवाही के बाद से राखाल के लिए फिर कोई समस्या उत्पन्न नहीं हुई। अक्सर वह समाधिस्थ होने लगा। उसकी यह हालत देखकर एक दिन ठाकुर ने कहा--"कहाँ इसको मेरी सेवा करनी चाहिए और कहाँ मुझे ही इससे भोजन-पानी के लिए पूछना पड़ता है। अगर कभी कुछ कहता हूँ तो जबाव देता है--अब यह संसार मुझे फीका लगता है।"

कई वर्ष साधना करने के बाद राखाल अचानक अस्वस्थ हो गया। काफी इलाज करने पर भी स्वस्थ नहीं हुआ। इन्हीं दिनों बलराम बाबू वृन्दावन जाने लगे। जाने के पहले वे ठाकुर के पास आये और कहा कि अगर आप अनुमति दें तो अपने साथ राखाल को लेता जाऊँ। पछांह की जलवायु से स्वस्थ हो जायगा।

ठाकुर ने अनुमति दे दी। वृन्दावन में आने पर ठाकुर की कृपा से राखाल स्वस्थ हो गया। वहाँ से कलकत्ता वापस आते ही पुनः बीमार हो गया। लाचारी में उसे ठाकुर ने उसके घर भेज दिया। घर पर काफी दिनों तक बीमार पड़े रहे और अपनी पत्नी की सेवा से दयार्द हो उठे।

इस बारे में ठाकुर ने एक बार कहा था--"मैं जान बूझकर उसे अक्सर घर भेज दिया करता था। उसके कुछ भोग अभी बाकी रह गये थे। एक प्रकार से आजकल वह पेन्शन का आनन्द ले रहा है। वृन्दावन से आने के बाद से आराम कर रहा है।"

कुछ दिनों तक घर पर आराम करने के बाद राखाल पुनः दक्षिणेश्वर आ गया। इन्हीं दिनों एक दिन श्री महिमा चरण चक्रवर्ती ने आकर ठाकुर से निवेदन किया--"आपके सामने ब्रह्मचक्र बनाकर साधना करने की इच्छा है।"

ठाकुर ने आज्ञा दे दी। राखाल, मास्टर, किशोरी आदि ध्यान करने लगे। ध्यान करते-करते जब राखाल भावावस्था में आया तब ठाकुर तुरत उसके वक्षस्थल पर हाथ फेरने लगे। थोड़ी देर बाद उसे होश आया।

दो दिन बाद ठाकुर ने कहा--"माँ यह दिखा रही थीं कि किसमें कितना प्रभाव विस्तार हुआ।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब इस बारे में लोगों ने स्पष्टीकरण करने को कहा तब ठाकुर मौन रह गये। दरअसल वे उस रहस्य को बताना नहीं चाहते थे। बाद में शारदानन्द को उन्होंने बताया—"राखाल के बारे में माँ ने काफी दिखाया, पर बताने को मना कर गयी है।"

× × ×

इस घटना के कुछ दिनों बाद ठाकुर परमहंस रामकृष्ण गले के कैंसर से पीड़ित हो गये। उन्हें अपनी स्थिति की जानकारी हो गयी। एक दिन नरेन्द्र और राखाल के गालों पर हाथ फेरते हुए बोले—"अगर यह शरीर कुछ दिन और रहता तो लोग चैतन्य हो जाते। मगर अब ऐसा नहीं होगा।"

राखाल ने कहा—"आपका शरीर ठीक रहे, इसके लिए आप कुछ करते क्यों नहीं ?"

ठाकुर ने कहा—"सब माँ की इच्छा है।"

एक दिन ठाकुर नरेन्द्र को बुलाकर 'रामकृष्ण-संघ' के बारे में बातें कर रहे थे। इस संघ के अध्यक्ष नरेन्द्रनाथ थे। बातचीत के सिलसिले में ठाकुर ने कहा—"जानता है ? राखाल में राज-बुद्धि है। अगर वह चाहे तो एक राज्य चला सकता है।"

परमहंसजी का राखाल के प्रति अपार स्नेह है, उसे वे अपना मानस-पुत्र समझते हैं, यह बात न केवल नरेन्द्र, बल्कि सभी शिष्य जानते थे। आज ठाकुर के इस कथन का प्रभाव नरेन्द्र पर व्यापक रूप से पड़ा।

उन्होंने अपने गुरु भाइयों को बुलाकर कहा—"आज से हम लोग राखाल को 'राजा' नाम से संबोधित करेंगे। हम सब उसके अनुचर बनकर उसकी आज्ञा का पालन करेंगे।"

नरेन्द्र की इस घोषणा को सुनकर ठाकुर काफी प्रसन्न हुए। प्रकट रूप से उन्होंने कहा—"राखाल का ठीक नामकरण हुआ है।"

रामकृष्ण की शिष्य-मंडली में नरेन्द्र सबसे बड़े थे। असल में वे ही वास्तविक नेता थे। इस घोषणा के बाद रामकृष्ण ठाकुर के सभी शिष्य राखाल को 'राजा' कहने लगे।

आखिर एक दिन ठाकुर ने शरीर त्याग दिया। उस दिन महाराजा (राखाल) की स्थिति अत्यंत शोचनीय हो गयी थी।

आनन्द मोहन प्रायः मठ में आते और अपने साथ महाराजा को घर ले जाते थे। ठाकुर ने राखाल को आदेश दे रखा था कि जब भी पिताजी यहाँ आयें तब उनका यथोचित सम्मान करना। ठाकुर के आज्ञानुसार राखाल अपने पिता का सम्मान बराबर करते रहे, पर उनके साथ घर वापस नहीं जाना चाहते थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ठाकुर के देहांत के बाद एक बार जब श्री आनन्द मोहन आये तब महाराजा (राखाल) ने कहा--"आप बार-बार यहाँ आने का कष्ट क्यों करते हैं ? मैं यहाँ आराम से हूँ। अब आप आशीर्वाद दें कि आप लोग मुझे भूल जायें और मैं आप लोगों को भूल जाऊँ।"

आगे चलकर महाराजा सभी को भूल गये थे। कुछ दिनों बाद जब पत्नी के निधन का समाचार आया तब जरा भी विचलित नहीं हुए। यहाँ तक कि उनका एक मात्र पुत्र सत्यानन्द सन् १८९६ में चल बसा, पर उन्हें वेदना की अनुभूति नहीं हुई।

ठाकुर के देहांत के बाद महाराजा जोर शोर से मठ और मिशन के कार्यों में व्यस्त हो गये। अचानक एक दिन उन्हें सनक सवार हुई कि तीर्थ यात्रा करनी चाहिए। इस निश्चय के बाद वे पुरी होते हुए द्वारिका धाम आये। यहाँ गोमती नदी में स्नान करने के लिए दो रुपये महसूल देना पड़ता है। राखाल महाराज के पास पैसे नहीं थे।

स्वामीजी बिना स्नान किये चले जा रहे हैं। यह देखकर एक सेठ ने कहा—"स्वामीजी, आप स्नान कर लीजिए। आपका टैक्स मैं दे दूँगा।"

स्वामीजी ने सेठ को मना करते हुए कहा--"गोमती के बदले अगर तीर्थराज समुद्र में स्नान किया जाय तो अधिक पुण्य मिलेगा। व्यर्थ में पैसे क्यों खर्च किये जाँय। हम लोग बेट द्वारिका-संगम में स्नान करेंगे।"

स्वामीजी के इस कथन पर सेठ इतना प्रसन्न हुआ कि वह स्वामीजी तथा उनके साथ सभी लोगों की तीन दिनों तक सेवा करता रहा। बाद में सेठजी ने चलते समय स्वामीजी को कुछ रकम दान में देनी चाही तो उन्होंने अस्वीकार कर दी।

साथ में सुबोधानन्दजी थे। मंदिर दर्शन करने के बाद वे भिक्षा माँगने निकले। मंदिर के महन्त ने भीख की झोली में कई सेर बादाम डाल दिये। उसे लेकर आप राखाल महाराज के पास आये।

उन्होंने पूछा--"इतना बादाम किसने दिया ?"

सुबोधानन्द ने कहा--"मंदिर के अध्यक्ष ने।"

"अपने लिए दो छटाँक रखकर बाकी वापस कर आओ।"

दो छँटाक के लगभग अपने पास रखकर जब शेष बादाम वापस करने गये तब महन्त ने लेने से इनकार कर दिया। महाराजा संचय नहीं करना चाहते थे। स्थिति विचित्र हो गयी। अंत में यह निश्चय हुआ कि शेष बादाम गरीबों में बाँट दिया जाय।

द्वारिका से महाराज वृन्दावन आये। यहाँ वे कठोर तपस्या करने लगे। उन दिनों यहाँ प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी थे। महाराजा की तपस्या की बात सुनकर एक दिन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वे आये और पूछा—"परमहंसजी तो आपको सभी प्रकार के साधन, भजन, अनुभूति दर्शन आदि दे गये हैं, फिर क्यों इतनी कठोर साधना कर रहे हैं ?"

महाराजा ने कहा—"उनकी कृपा से सभी प्रकार के अलौकिक दर्शनों की उपलब्धि हो गयी है। इन दिनों उन सबको आयत्त कर रहा हूँ।"

वृन्दावन में रहते समय महाराजा ने एक दिन प्रत्यक्ष रूप से देखा कि भक्त प्रवर बलराम बाबू ज्योतिर्मय शरीर धारण कर हँसते-हँसते दिव्यलोक चले जा रहे हैं। बाद में उन्हें एक पत्र के जरिये ज्ञात हुआ कि गत १३ अप्रैल, १८९० ई० को उनका निधन हो गया था।

वृन्दावन निवासकाल में एक दिन स्वामी तुरीयानन्द ने कहा—"आज भिक्षा माँगने नहीं जाऊँगा। देखूँ, राधारानी कृपा करती हैं या उपवास करना पड़ता है।"

दोनों गुरु भाई इसी प्रतीक्षा में चौबीस घंटे उपवासी रह गये। दूसरे दिन एक तीर्थयात्री आया और बिना याचना के ही प्रचुर खाद्य सामग्री दे गया।

× × ×

सन् १८९३ ई० में स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में तूफान मचा दिया जिसकी जय-ध्वनि भारत तक पहुँच गयी। सन् १८९४ ई० में महाराजा पुनः वृन्दावन आकर तपस्या करने लगे। इस बार वे न कहीं भिक्षा माँगने जाते और न किसी से कुछ माँगते थे। अगर किसी दिन भोजन मिलता तो खा लेते और नहीं तो उपवास करते थे। कभी कोई सेठ कम्बल दे गया तो दूसरे दिन उसे कोई चोर उठा ले गया। चोर को चोरी करते देख कुछ नहीं कहते थे। हमेशा अपने भाव में मगन रहते थे। इस प्रकार दो माह तपस्या करने के बाद कलकत्ता वापस आ गये।

देखते-देखते कई वर्ष बीत गये। इस बीच कई घटनाएँ हुईं। स्वामी विवेकानन्द सन् १९०० के अगस्त माह में विदेश से वापस आ गये थे। मठ में आकर वे मठ तथा मिशन के कागजों को ठीक करने लगे।

परमहंस रामकृष्ण ने कहा था कि जिस दिन नरेन्द्र को अपने बारे में ज्ञान हो जायगा, उसके बाद वह नहीं रहेगा। स्वामी विवेकानन्द को अपने बारे में जानकारी हो गयी थी। सन् १९०१ ई० के प्रारंभ में उन्होंने मठ और मिशन के अध्यक्ष-पद को त्याग दिया। उस पद पर राखाल महाराज को स्थापित करते हुए उन्होंने कहा—"आज तक जिस सम्पत्ति की देखभाल करता आया, आज उसे सौंपकर मैं निश्चिन्त हो गया। आज से राखाल राजा नहीं, महाराजा के रूप में कार्य करेगा। हम सब उसके शिष्य के रूप में उसकी आज्ञा का पालन करेंगे।"

एक दिन सचमुच विवेकानन्दजी ने अपनी महानता का परिचय दिया। राखाल महाराज को प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा—"गुरुवत गुरुपुत्रेषु।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राखाल महाराज इस सम्बोधन से चौंके नहीं। तुरत प्रत्युत्पन्नमति से काम लेकर उन्होंने कहा––"ज्येष्ठ भ्राता सम पिता।"

वास्तव में दोनों एक दूसरे के स्वरूप से अच्छी तरह परिचित थे। राखाल महाराज अध्यक्ष पद पर रहते हुए भी आजीवन विवेकानन्दजी के प्रति गुरु की तरह श्रद्धा निवेदित करते थे। जब तक स्वामी विवेकानन्द जीवित थे तब तक उनसे बिना पूछे कोई काम नहीं करते थे।

इधर स्वामी विवेकानन्द अक्सर कहा करते थे––"महाराजा ठाकुर का पुत्र है। हम लोग उसके शिष्य हैं और वह भी सबसे छोटा शिष्य।"

कभी कहते––"ऊपर स्पिरिचुअल डायनामो चल रहा है, उसके अंडर में हम लोग काम कर रहे हैं।"

स्वामी विवेकानन्द के प्रति महाराजा की कितनी श्रद्धा थी, इसका अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि स्वामी विवेकानन्द ने अपनी एक पुस्तक महाराजा को भेंट की थी। जब कभी उसे पढ़ने की इच्छा होती तब गंगा जल से अच्छी तरह हाथ धोकर पुस्तक को स्पर्श करते थे।

आपस में प्रेम-कलह भी अक्सर होता था। मठ के आँगन में एक काल्पनिक सीमा रेखा बना दी गयी थी। जब एक की बत्तक दूसरे की सीमा में आ जाती तब एक दूसरे से झगड़ जाते थे। मठ के अन्य लोगों को इस झगड़े में आनन्द मिलता था।

कभी-कभी विवेकानन्दजी सचमुच नाराज हो जाते थे। बराबर अस्वस्थ रहने के कारण मिजाज कुछ चिड़चिड़ा हो गया था। स्वामी विवेकानन्द चाहते थे कि उनकी योजनानुसार काम जल्द समाप्त हो जाय, पर जब समयानुसार काम नहीं होता था तब झल्ला उठते थे। उनकी यह झल्लाहट अध्यक्ष के प्रति होती। थोड़ी ही देर बाद क्रोध शांत होने पर अपनी गलती महसूस करते और अध्यक्ष के पास जाकर कहते––"राजा, राजा, मुझसे गलती हो गयी। क्रोध में आकर मैंने तुम्हें गाली दी है।"

दूसरे ही क्षण कहते––"मैं जानता हूँ कि मुझे सभी लोग छोड़ देंगे, पर राजा ऐसा कभी नहीं करेगा। इस दुनिया में अगर कोई मेरी गालियाँ बर्दाश्त कर सकता है तो वह है––एक मात्र राजा।"

विवेकानन्दजी को इस प्रकार का खेद प्रकट करते देख राखाल महाराज व्याकुल हो उठते। कहते––"क्यों आप ऐसी बात कह रहे हैं? अगर आपने गाली दी है तो क्या हुआ? बड़े भाई हैं, आप मुझे प्यार करते हैं, तभी न इतना कहते हैं।"

दो गुरु भाइयों का ऐसा प्रेम बहुत कम देखने में आता है। इस प्रेम को सामान्य लोग हृदयंगम नहीं कर पाते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिस दिन स्वामी विवेकानन्द का तिरोभाव हुआ, उस दिन राखाल महाराज बलराम मंदिर में थे। समाचार पाते ही वे दौड़े हुए और स्वामी विवेकानन्दजी के ऊपर पछाड़ खाकर गिर पड़े। शारदानन्द स्वामी ने बल पूर्वक उन्हें शव से अलग किया।

रोते हुए राखाल महाराज ने कहा—"आज मेरे सामने से हिमालय पहाड़ अदृश्य हो गया।"

× × ×

सन् १९०३ ई० में स्वामी ब्रह्मानन्द कनखल आये। यहाँ स्वामी तुरीयानन्द तपस्या कर रहे थे। स्वयं महाराजा भी १२ बजे उठकर ध्यान करते थे। एक दिन जब ठीक समय पर उनकी नींद नहीं खुली तब सूक्ष्म शरीर में एक संन्यासी ने आकर उन्हें धक्का देकर जगाया। महाराजा वृन्दावन से इलाहाबाद, विंध्याचल आदि तीर्थों का दर्शन करते हुए बेलुड़ आ गये।

ठाकुर के निधन के बाद स्वामी ब्रह्मानन्द (राखाल, महाराजा) श्री शारदा माता को उनसे भी महान् समझते थे। उनके सामने जाने से कतराते थे। अगर मजबूरन जाना पड़ता था तब बहुत कांपते थे।

एक बार श्रीमाँ से एक भक्त ने प्रश्न किया—"सभी संन्यासी आपको प्रणाम करने आते हैं, पर राखाल महाराज कभी नहीं आते।"

श्रीमाँ ने जवाब दिया—"क्या कहती है? मेरा राखाल तो साक्षात् नारायण है। जब उसकी इच्छा होती है तब मुझे देख लेता है।"

बात सही है। श्रीमाँ के सामने आते ही राखाल महाराज की हालत खराब हो जाती है। उनके हाथ और ओंठ काँपने लगते हैं। पसीने से भींग जाते हैं। आंखें बन्द कर दोनों हाथ जोड़ते हुए प्रणाम करते हैं। इधर श्रीमाँ के पास जब कोई भक्त आता है और उन्हें प्रणाम करने के बाद जाने लगता है तब वे कहती हैं—"मेरे राखाल को नहीं देखोगी? उसे देखकर अपना जीवन सार्थक कर लो।"

महाराजा मद्रास आये थे। शशि महाराज उनकी सेवा में व्यस्त थे। इन दिनों महाराजा संपूर्ण संसार के रामकृष्ण मठ और मिशन की अध्यक्ष के रूप में देखभाल कर रहे थे।

ठीक इन्हीं दिनों मद्रास मठ का एक शिष्य स्वामी उमाकान्त चेचक से पीड़ित हुआ। उसे अस्पताल में भर्ती कर दिया गया। हालत सुधरने की अपेक्षा खराब होती गयी। शशि महाराज उसे शांति देने के लिए उसके पास बैठकर नित्य परमहंसदेव के बारे में तरह-तरह की कहानियाँ सुनाया करते थे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक दिन बीमार शिष्य ने कहा--"मैं महाराजा का दर्शन करना चाहता हूँ। आप उन्हें एक बार ले आइये।"

शशि महाराज ने राखाल महाराज से मरीज की इच्छा दुहराई। सारी बात सुनने के बाद राखाल महाराज बच्चों की तरह कह उठे--"नहीं, नहीं, शशि। अगर मैं वहाँ गया तो बीमार हो जाऊँगा।"

शशि महाराज ने काफी समझाया। यह भी कहा कि आप दूर से उसे एक बार दर्शन देकर चले आइयेगा। लेकिन इस पर भी महाराजा राजी नहीं हुए।

दूसरे दिन मरीज के पास आने पर शशि महाराज ने देखा कि उसकी हालत पहले की अपेक्षा अधिक खराब है। मरीज ने आज भी अनुरोध किया--"आप महाराजा को एक बार ले आइये।"

उमाकान्त को रोते देख शशि विचलित हो उठे। तुरत महाराजा के पास आकर उन्होंने कहा--"महाराजा, एक बार चले चलो। दो मिनट के लिए। तुम्हें देखने की उसे प्रबल इच्छा है।"

ब्रह्मानन्द स्वामी पहले की तरह इनकार कर गये। यह देखकर शशि महाराज ने कहा--"उमाकान्त यहीं का लड़का है। कम से कम एक झलक दिखाकर चले आइये।"

फिर भी महाराज नहीं गये। दूसरे दिन शशि महाराज जब अस्पताल में उमाकान्त को देखने गये तब पता चला कि उसकी मृत्यु हो गयी। शशि महाराज बड़े दुःखी हुए।

महाराजा के पास आकर उन्होंने तीखे स्वर में कहा--"उमाकान्त चला गया।"

महाराजा को चुप रहते देख अत्यन्त क्षोभ के साथ शशि महाराज ने कहा--"महाराजा, तुम कितने निष्ठुर हो। इतनी मिन्नत मैंने की, पर तुम क्षण भर के लिए नहीं जा सके। मैं जानता था कि उमाकान्त बचेगा नहीं। वह एक बार तुम्हें देखना चाहता था, उसकी वह इच्छा पूरी नहीं हुई। सचमुच आप हृदय-हीन हैं।"

महाराजा चुपचाप सारी शिकायतें सुनते रहे। बाद में हुक्के की नली हटाते हुए उन्होंने कहा--"क्या प्रत्यक्ष देखना ही देखना होता है? क्या मैं वहाँ नहीं गया था?"

महाराजा के इस कंठस्वर को सुनते ही शशि महाराज सन्नाटे में आ गये। तुरत साष्टांग प्रणाम करते हुए बोले--"मैं अज्ञानी हूँ महाराज, समझ नहीं सका। मुझसे गलती हो गयी। मुझे क्षमा कर दीजिए।"

महाराजा को ज्ञात था कि स्थूल शरीर में जाते ही उमाकान्त का तुरत निधन हो जायगा। उस समय सभी उसके निधन का आक्षेप मुझ पर लगायेंगे। इस कलंक से बचने के लिए महाराजा स्थूल शरीर में न जाकर सूक्ष्म रूप से गये थे। इन्हें देखते ही उसका शरीरांत हो गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसी प्रकार की एक घटना एक अमेरिकी व्यापारी के साथ हुई थी। एक अमेरिकी व्यापारी ने महाराजा को स्वप्न में देखा था। स्वप्न में ही उसे निर्देश मिला कि भारत आकर बेलुड़ मठ में महाराजा का प्रत्यक्ष रूप से दर्शन करो।

भारत आने पर वह सर्वप्रथम स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) से मिला। व्यापारी की इच्छा जानकर स्वामी शिवानन्द उसे अपने साथ लेकर बेलुड़ मठ आये। स्वामीजी पहले महाराजा के पास गये और उन्हें अमेरिकी व्यापारी को दर्शन देने की प्रार्थना की।

महाराजा ने तुरत इनकार कर दिया। स्वामी शिवानन्द बराबर आग्रह करते रहे, पर महाराजा अपनी बात पर जमे रहे। व्यापारी और स्वामी दोनों ही असमंजस में पड़ गये।

स्वामी शिवानन्द ने सुझाव दिया कि व्यापारी महोदय वक्त गुजारने के लिए कुछ देर कलकत्ता के दर्शनीय स्थानों को देख लें। बाद में शाम को दक्षिणेश्वर से नाव द्वारा बेलुड़ मठ की ओर रवाना होंगे। महाराजा तीसरे पहर मठ के मैदान में टहलते हैं। उस वक्त आसानी से उनके दर्शन हो जाएँगे। इस सुझाव को सुनकर व्यापारी प्रसन्न चित्त हो घूमने चला गया।

शाम के समय निर्दिष्ट समय पर स्वामी शिवानन्दजी व्यापारी के साथ दक्षिणेश्वर से बेलुड़ मठ तक आये। यहाँ आकर उन लोगों ने देखा कि आज महाराजा नित्य की तरह अभी तक टहलने नहीं निकले हैं।

नाव घाट किनारे लगी। स्वामी शिवानन्द तथा व्यापारी किनारे उतरकर सामने देखने लगे। ठीक उसी समय भवन की दूसरी मंजिल पर महाराजा दिखाई दिये।

उन्हें देखते ही व्यापारी 'इयेस-इयेस' कहते हुए चिल्ला उठा और देखते-देखते गिर पड़ा और तत्क्षण उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। महाराजा के दर्शन से उसे मुक्ति मिल गयी।

महाराजा इस बात को जानते थे, इसीलिए उन्होंने मठ में दर्शन नहीं दिया। अगर मठ में एक विदेशी नागरिक की मृत्यु हो जाती तो पुलिस बखेड़ा करती। उन दिनों ब्रिटिश सरकार यह विश्वास करती थी कि मठ में क्रांतिकारियों का अड्डा है।

× × ×

श्री श्रीमाँ दक्षिण-भारत यात्रा करने के पश्चात् जब लौटी तब वे मठ के दो तल्ले वाले कमरे में रहने लगीं। एक दिन नीचे कीर्तन हो रहा था। महाराजा आम के पेड़ के नीचे आराम कुर्सी पर बैठे हुक्का पी रहे थे। कीर्तन सुनते-सुनते महाराजा के हाथ से हुक्के की सटक गिर गयी। वे समाधिस्थ हो गये। कुछ देर बाद लोगों का ध्यान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस ओर गया। तुरत कीर्तन बन्द हो गया। सभी लोग एक टक महाराजा की ओर देखने लगे। दो घंटे गुजर गये, पर महाराजा की समाधि भंग नहीं हुई।

बात श्रीमाँ के पास पहुँची। श्रीमाँ ने एक संन्यासी को एक मंत्र बतलाकर कहा--"राखाल के कान में यह मंत्र कह दो।"

मंत्र सुनते ही महाराज प्रकृतिस्थ हो गये। सहसा गायक-मंडली की ओर देखते हुए बोले--"हाँ, हाँ, कीर्तन चालू रखो। बन्द क्यों है?"

बंगला साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार श्री क्षीरोद प्रसाद विद्याविनोद महाराजा के दर्शन करने आये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा--"महाराज, ठाकुर (परमहंस रामकृष्ण) के दर्शन करने का अवसर मिलने पर भी मैं उनका दर्शन नहीं कर सका। उन दिनों मैं तेजी से लेखन-कार्य में लगा हुआ था। एक दिन दक्षिणेश्वर जाने के लिए घर से निकला। आलम बाजार तक आया। एकाएक मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि ठाकुर तो लोगों के मन की बात जान लेते हैं और लोगों के मुंह पर कह भी देते है। अगर कहीं मेरे मन की गोप्य बात कह देंगे तो क्या होगा? इसी ऊहापोह में ठाकुर के पास न जाकर मैं वापस लौट गया। बड़ा अभागा हूँ। अगर कुछ दूर और चला जाता तो उनका दर्शन हो जाता।"

महाराजा ने कहा--"जब आप आलम बाजार तक आये थे तब तो आपका दर्शन हो गया।"

"नहीं, महाराज। मुझे दर्शन नहीं मिला। सचमुच मैं बड़ा अभागा हूँ।" कहने के साथ वे रोने लगे।

"क्षीरोद बाबू, मैं ठीक कह रहा हूँ। आप ठाकुर का दर्शन कर चुके हैं।"

सहसा महाराजा के गंभीर स्वर को सुनते ही क्षीरोद बाबू ने चौंककर उनकी ओर देखा। वहाँ राखाल महाराज के स्थान पर स्वयं ठाकुर बैठे थे।

× × ×

महाराजा अपने कई पार्षदों के साथ दक्षिण भारत दर्शन करने गये थे। तिरुपति बालाजी मूर्ति दर्शन करते ही महाराजा चौंक उठे। मंदिर के प्रांगण में आते ही उन्होंने सर्वानन्द से कहा--"सर्वानन्द, मैंने यह क्या देखा? यह तो देवी मूर्ति है। जरा पता लगाओ, बात क्या है। आखिर मैंने देवी मूर्ति क्यों देखी?"

काफी पूछताछ करने के बाद मंदिर के बड़े महंत ने कहा--"बात ठीक है। तिरुबाला से मूर्ति को तिरुपतिबालाजी बनाया गया है। मूर्ति के त्रिनयन हैं। एक नयन चन्दन से ढक दिया जाता है। पैरों के गहनों को भी चन्दन से ढक दिया जाता है।"

प्रत्येक शुक्रवार को विग्रह का महाभिषेक तथा महास्नान होता है। महंत के प्रबंध करने पर महाराजा ने दिगम्बरी मूर्ति के दर्शन किए थे। काले पत्थर की सात फुट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऊँची मूर्ति है। पैरों की सांकल तथा तीसरे नेत्र को रगड़कर घिस दिया गया है। फिर भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था। यह घटना सन् १९१७ ई० की है।

महाराजा के एक शिष्य का नाम था--नव गोपाल घोष। इनके पुत्र का नाम श्याम सुन्दर था। यह भी महाराजा के शिष्य थे। एक दिन महाराजा के पास आकर बोले--"महाराज, आजकल मूड उखड़ा-उखड़ा सा रहता है। अगर आप अनुमति दें तो काश्मीर घूम आऊँ।"

महाराजा से आज्ञा पाते ही श्यामसुन्दर काश्मीर गये और डल झील में एक किराये की बोट पर अपना रंगीन-जीवन गुजारने लगे। शराब और नृत्य के दौर चलते रहे। एक दिन रात को बाईजी का नृत्य सहसा रुक गया। बोट पर जितने मल्लाह और अन्य लोग थे--तलवार-कृपाण और चाकू लेकर श्याम सुन्दर के आसपास खड़े हो गये। इस दृश्य को देखते ही घोष महाशय का सारा नशा हिरन हो गया। नाव में ऐसा कोई भी नजर नहीं आ रहा था जिसकी आँखों में दया की झलक हो।

असहाय अवस्था में सहसा भगवान् के साथ गुरुदेव की याद आ गयी। सामने मौत को खड़ी देखकर लोगों को भगवान् की याद आती ही है।

महाराजा उस समय बंगलोर के आश्रम में सो रहे थे। अचानक जाग उठे और बगल के कमरे में गये। ठाकुर के भतीजे रामलाल दादा को जगाकर उन्होंने कहा--"अभी तुरत बड़े पोस्ट आफिस में जाकर यह तार कर दो। अर्जेण्ट करना। उसमें लिखना--किराया मत दो। ब्रह्मानन्द।"

रामलाल दादा काश्मोर के होटल का पता लेकर तारघर चले गये।

इधर घोष महाशय की हालत पल-प्रतिपल खराब होती जा रही थी। लोगों के प्रश्नों का उत्तर देने में उनका गला सूखता जा रहा था। देर होते देख सभी डकैत उन्हें पीड़ा पहुँचाने लगे।

कराहते हुए श्यामसुन्दर ने कहा--"मुझे मार डालने पर तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। हाउस बोट किनारे लगाओ। मैं अभी होटल के मैनेजर के नाम पत्र लिख देता हूँ। आपका कोई आदमी इस पत्र को लेकर मैनेजर को दिखा दे। वह मेरे कमरे से बेग निकालकर दे देगा। आखिर तुम लोग रुपयों के लिए मेरी हत्या करना चाहते हो, सो सहज ही मिल जाएँगे।"

लुटेरों को सुझाव पसन्द आया। जब तक हमारा आदमी रुपयों का बेग लेकर नहीं आता तबतक बाबू बोट पर रहेंगे। रुपये पाते ही इन्हें छोड़ दिया जायगा। पुलिस में जाने से कोई लाभ नहीं होगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धीरे-धीरे भोर होने लगा। पत्र लिखा जा चुका था। ठीक इसी समय किनारे से आवाज आयी--"बाबू श्यामसुन्दर घोष, काश्मीर होटल वाले क्या इस बोट पर हैं ?"

अपना नाम सुनते ही श्याम सुन्दर घोष बोट के बाहर आये। देखा--पोस्टमैन है। उन्होंने पूछा--"क्या बात है ? मैं हीं काश्मीर होटल का यात्री श्याम सुन्दर हूँ।"

पोस्टमैन ने कहा--"आपका तार है बाबूजी, मैं होटल गया था, वहाँ पता चला कि आप डल झील के किसी बोट पर हैं, इसलिए यहाँ आ गया।"

तार खोलते ही श्याम सुन्दर ने स्वामीजी का भेजा मजमून पढ़ा। अब शेष बातें घोष महाशय की जबानी सुनिये--इस तार को हाथ में लेते ही मेरे शरीर में हाथी जैसा बल आ गया। जूता खोलकर एक सिरे से दनादन लोगों को पीटना शुरु किया। जिसे जहाँ जगह मिली, उधर ही भाग निकला। कुछ तो झील में कूद गये। यह दृश्य देखकर तार-कर्मचारी भी भय के कारण भागने लगा। मैंने उसे सांत्वना दी। उसे अपने साथ ले आया और पुरस्कार दिया।

महाराजा स्वतः कभी-कभी अलौकिक-दर्शन करते थे। एक बार आप बलराम मंदिर में थे, उस समय अचानक आपके सिर में भयंकर रूप से दर्द होने लगा। कभी सिर दबाने को कहते और कभी पैर दबाने को। अत्यधिक यंत्रणा के कारण रह-रहकर 'माँ-माँ' कहते भी रहे।

फिर बिछौने पर उठकर बैठ गये और कहा--"जरा गंगा-जल दो।"

इसके बाद ध्यानस्थ होकर कहने लगे--"माँ, तेरा दस विद्यावाला रूप देखूंगा।"

देखते ही देखते कमरे में हवा की कमी हो गयी। अंधेरे में देवी-दर्शन होने लगा। महाराजा कहने लगे--"आहा, काली, तारा, षोड़शी, वाह ! क्या रूप है ?"

थोड़ी देर बाद उन्होंने स्वामी अमृतानन्द से कहा--"जाओ, नीरोद (स्वामी अम्बिकानन्द) को बुला लाओ। उससे भजन सुनना है।"

नीरोद महाराज नीचे थे। समाचार पाते ही उन्होंने अमृतानन्द से पूछा--"इस वक्त महाराज में कैसा भाव है ?"

अमृतानन्द ने जो कुछ देखा था, सारी कहानी सुनायी। ऊपर आकर नीरोद महाराज पहले काली, दूसरा तारा, तीसरा षोड़शी रूपा के भजन सुनाये।

× × ×

स्वामी अखण्डानन्द उन दिनों सारिगाछी में मलेरिया से पीड़ित थे। ठीक इन्हीं दिनों पता चला कि स्वामी प्रेमानन्द का तिरोधान हो गया है। इस समाचार को सुनकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसी दिन स्वामी अखण्डानन्द ने सारिगाछी आश्रम में भजन, कीर्तन के बाद दरिद्र नारायण को भोजन कराया।

इसके बाद अपना नश्वर शरीर छोड़ने के लिए वे अपने कमरे में आकर ध्यानस्थ हो गये।

रात्रि के अंतिम पहर में उन्होंने देखा कि तन पर लाल साड़ी, माँग में सिन्दूर पहने एक मातृ मूर्त्ति उनके समीप आकर बोली--"तू जायगा? दादा (स्वामी प्रेमानन्द) के पास जायगा। आ, मेरे पीछे-पीछे।"

स्वामी अखण्डानन्द उस महिला के पीछे-पीछे चल पड़े। आगे एक बड़ी नदी मिली जिस पर एक पुल था। पुल के मध्य भाग तक आते ही उन्होंने देखा कि दूसरी ओर से दोनों हाथ फैलाते हुए महाराजा दौड़े हुए आ रहे हैं। अखण्डानन्द को बाहुपाश में लेने के बाद उन्होंने कहा--"गंगाधर (स्वामी अखण्डानन्द), तुम अभी कहाँ जाओगे? तुम्हें तो अभी अनेक कार्य करने हैं। तुम अभी नहीं जा सकते।"

जिस समय स्वामी अखण्डानन्द अपनी यह कहानी लोगों को सुना रहे थे, उस समय महाराजा बरामदे में टहलते हुए इस कहानी को सुन रहे थे। उन्होंने कहा--"गंगाधर, अभी तक तुम पहचान नहीं पाये?"

गगाधर ने कहा--"नहीं, महाराजा, अब पहचान गया हूँ।"

महाराजा में अगर बच्चों जैसी सरलता थी तो बादलों की तरह गंभीरता भी थी। जिस वक्त वे बरामदे पर चहलकदमी करने लगते, उस वक्त उनकी मुद्रा तेजस्वी सिंह की तरह हो जाती थी। लोग उस चेहरे को देखकर पास जाने का साहस नहीं करते थे।

एक बार महाराजा मद्रास के मठ में कुछ दिनों से निवास कर रहे थे। मठ में एक सेवक फूलों को सजा रहा था जिसे कोई भक्त दे गया था।

टहलते हुए महाराजा इधर आये और उन्होंने पूछा--"कुछ फूल ठाकुर (परमहंसदेव) के लिए अलग से रख दिए हैं न?"

सेवक ने कहा--"जी नहीं।" उसने मन ही मन सोचा कि ठाकुर के कमरे में तो केवल उनके चित्र की पूजा होती है। श्रीगुरु तो जीवन्त भगवान् है।

महाराजा में एक विशेषता यह थी कि वे किसी भी व्यक्ति के मन की बात तुरत भाँप लेते थे। सेवक के मन की बातें वे तुरत समझ गये। संभवतः इस सेवक को आश्रमाध्यक्ष कभी पूजा करने नहीं देते, इसीलिए इसने ऐसा सोचा। उन्होंने आश्रमाध्यक्ष को बुलाकर आवश्यक निर्देश दिया। इसके बाद सेवक से उन्होंने कहा--"मन को एकाग्र करने के लिए ऐसी मूर्ति तुझे कहाँ मिलेगी?"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महाराजा की आज्ञा मानकर सेवक आगे से बराबर पूजा करने लगा और उसे लाभ हुआ।

महाराजा की इच्छा-शक्ति बहुत प्रबल थी। कई साहसी कार्यों को उन्होंने सम्पन्न किया है। एक बार आप स्वामी प्रभवानन्द आदि के साथ घूम रहे थे। अचानक एक ओर से आवाज आयी--"भागो, भागो। सांड़ आ रहा है।"

सभी लोगों ने देखो--एक क्रोधी साँड़ तेजी से दौड़ता हुआ आ रहा है। साथ आये लोग महाराजा की रक्षा के लिए उनके सामने आकर खड़े हो गये।

रक्षकों को अपने सामने से ढकेलते हुए महाराजा शांत भाव से खड़े हो गये। साँड़ आपके पास आकर चुपचाप खड़ा हो गया। कुछ देर तक स्थिर भाव से खड़ा रहा और फिर पीछे वापस चला गया।

ठीक इसी प्रकार एक बार आप स्वामी अखिलानन्द तथा अन्य भक्तों के साथ भुवनेश्वर के जंगलों में घूम रहे थे। अचानक न जाने कहाँ से एक बाघ इन लोगों के सामने आ गया।

सभी भय से पीले पड़ गये। केवल महाराजा स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे। बाघ फिर आगे नहीं बढ़ा। धीरे से पीछे मुड़कर जंगल की ओर भाग गया।

× × ×

अप्रैल माह, सन् १९२० में स्वामी अद्भुतानन्द के शरीरांत के बाद एक और दुर्घटना हुई, २१ जुलाई की रात को एक बजे सेवक महाराजा के कमरे में आये। उसने देखा कि वे एक चादर ओढ़कर गंभीर रूप से आराम कुर्सी पर बैठे हुए हैं।

सेवक को इतना साहस नहीं हुआ कि महाराजा से इस तरह बैठे रहने का कारण पूछे। यह एक प्रकार से अप्रत्याशित दृश्य था। वह शंकित मन से वापस चला गया।

दूसरे दिन आश्रम में तार आया कि ठीक उसी समय श्री श्रीमाँ का महाप्रयाण हुआ था। श्रीमाँ के निधन के बाद महाराजा लगातार कई दिनों तक अबोध शिशु की तरह रोते रहे। बारह दिनों तक नंगे पैर रहते हुए हविष्यान्न खाते रहे।

२४ मार्च, सन् १९२२ के दिन सहसा महाराजा हैजे से पीड़ित हुए। लोगों ने सलाह दी कि महाराजा को होमियोपैथी दवा दी जाय। उससे लाभ न होने पर एलोपैथी, फिर वैद्यगी दवा दी गयी।

एक दिन महाराजा ने हँसते हुए कहा--"सभी प्रकार की दवा हो गयी। अब केवल हकीमी बाकी है। वह भी हो जाय।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

८ अप्रैल के दिन रात ९ बजे सभी शिष्य, साधु-ब्रह्मचारियों को बुलाकर उन्होंने कहा––"डरो मत। ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या। तुम सबका कल्याण हो।"

इतना कहकर वे ध्यानमग्न हो गये।

पुनः कहने लगे––"यह तो पूर्णचन्द्र है। रामकृष्ण। मैं तो व्रज का राखाल हूँ। मुझे घुंघरू पहनाओ। मैं कृष्ण का हाथ पकड़कर नृत्य करूँगा। छम, छमाछम। देखो, कृष्ण आये हैं। तुम लोग देख नहीं पा रहे हो। आहा, क्या सुन्दर रूप है मेरे कृष्ण का। व्रज के कृष्ण हैं। अब खेल समाप्त हुआ। देखो, एक नन्हा बच्चा मेरे पैरों को सहला रहा है। वह कह रहा है––मेरे पास चले आओ।"

इसके बाद महाराजा नीरव हो गये, दूसरे दिन भी चुप रहे। तीसरे दिन रात पौने नौ बजे श्री रामकृष्ण देव के मानस-पुत्र राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) ने अपना शरीर त्याग दिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

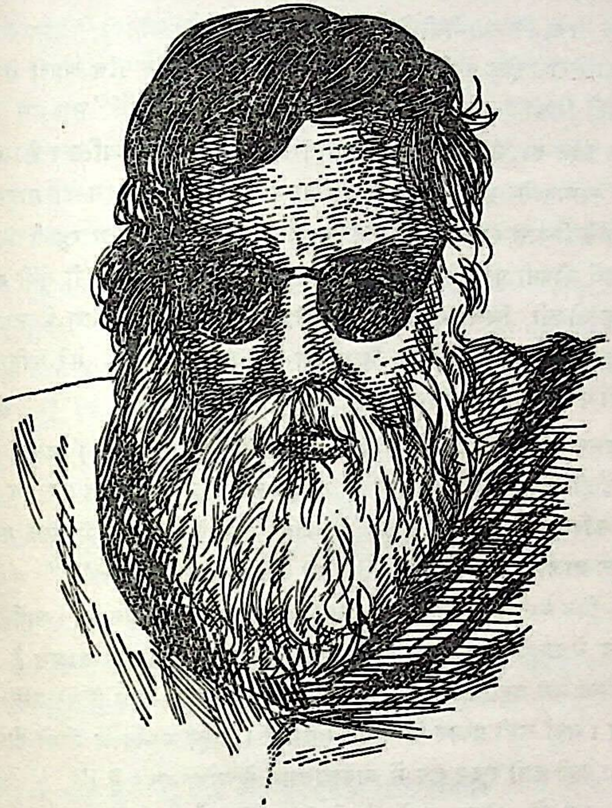

स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस

सन् १९४८-४९ की बात है। अपने नगर के एक दैनिक पत्र में काशी के बारे में लेख माला प्रकाशित होने लगी। इस पत्र के संपादक भाई मोहनलाल गुप्त के अनुरोध पर लेख लिखने लगा। अद्‌भुत घटनाओं की तलाश में निरंतर चक्कर काटा करता था। उन्हीं दिनों एक पुस्तक हाथ लगी जिसके लेखक थे—ब्रिटेन के प्रसिद्ध पत्रकार, डाक्टर पाल ब्रंटन। इनकी पुस्तक का नाम है—'गुप्त भारत की खोज'।

इस पुस्तक में एक अध्याय है—'बनारस का मायावी'। इस लेख में स्वामी विशुद्धानन्द की जीवनी के अलावा कुछ अलौकिक घटनाओं का वर्णन था। स्वामी विशुद्धानन्दजी के नाम से परिचित था। मलदहिया स्थित 'विशुद्धानन्द कानन' सड़क से गुजरते हुए अनेक बार देख चुका था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाल ब्रंटन के लेख से ज्ञात हुआ कि महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज स्वामी विशुद्धानन्द के शिष्य हैं। कविराजजी मेरे पड़ोसी थे और उनके यहाँ मैं बराबर जाया करता था। उनके मानस पुत्र सीताराम पाण्डेय अब दादा सीताराम मेरे सहपाठी थे। इस कारण भी अक्सर जाना पड़ता था।

मैंने सोचा कि स्वामीजी के बारे में कविराजजी से जानकारी प्राप्त करके एक लेख लिखूंगा। मेरा उद्देश्य सुनते ही कविराजजी ने कहा––"मैंने पाँच खण्डों में अपने गुरुदेव की जीवनी लिखी है। तुम एक लेख में कितना लिख सकोगे?"

इस प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दे सका। एक तो उनके व्यक्तित्व से घबराता था, दूसरे वे स्वभाव से इतने गंभीर थे कि उनसे खुलकर बातें करने का साहस नहीं होता था। उनके निवास स्थान पर जाकर स्वामीजी की जीवनी पढ़ता रहा।

संपूर्ण जीवनी पढ़ने के बाद लगा जैसे नानी-दादी की जबानी सुनी कहानियों की तरह यह जीवनी लिखी गयी है। कोई व्यक्ति अपने आप आकाश में उड़ सकता है? रात भर में पैदल ढाका शहर से विंध्याचल कैसे आ सकता है? मेरे अविश्वासी मन ने इन बातों पर विश्वास नहीं किया।

लगभग १४-१५ वर्ष बाद चीन ने तिब्बत पर हमला किया। दलाई लामा भारत आये। इन्हीं दिनों भाई मोहनलाल का आदेश हुआ कि मैं तिब्बत पर एक लेख लिखने के लिए कविराजजी से अनुरोध करूँ। कविराजजी ने कहा––"मैं लिख नहीं सकूंगा। जरा ठहर जाओ। कोई शिष्य आ जाय तो उसे बोलकर लिखवाऊँ।"

एक दिन गया तो देखा––डा० जगन्नाथ उपाध्याय लिपिक का कार्य कर रहे हैं। अपने लेख में उन्होंने कहा है—"तिब्बत में ऐसे अनेक मठ और आश्रम हैं जो अलक्ष्य हैं। सामान्य जन वहाँ पहुँच नहीं पाते। अगर वहाँ पहुँच जाते हैं तो उन्हें कुछ दिखाई नहीं देता। वहाँ सभी प्रकार के साधन सुलभ हैं। वहाँ रहनेवाले योगी दीर्घजीवी होने के अलावा कभी-कभी सूक्ष्म रूप में आकाश मार्ग से यात्रा करते हैं।"

इस तरह की अद्भुत बातों को वे लिखवाते रहे। मैं मन ही मन उनकी कपोत कल्पना पर मुस्कराता रहा। जिस भूमि को चीनी सैनिकों ने रौंद डाला है, वहाँ अलक्ष्य मठ कहाँ होंगे।

लेख छपने के बाद प्रति लेकर उनके यहाँ गया। बातचीत के सिलसिले में उद्दण्डों की तरह अपनी शंका प्रकट की।

उन्होंने कहा––"तुम्हारी जानकारी कम है। तुम्हारी शंका दूर करने के लिए एक घटना का विवरण बताता हूँ। द्वितीय महायुद्ध के समय दो जर्मन यात्री भारत आये थे। सहसा हिटलर ने युद्ध की घोषणा कर दी। शत्रु देश के यात्री होने के कारण वे घबराकर हिमालय की ओर भागे।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैंने पूछा––"इकाई कावागुची तो नहीं।"

उन्होंने कहा––"नहीं। वह जापानी था। ये दोनों जर्मनी के थे। एक और जर्मन गया था जिससे पूज्य दलाई लामा विदेशी भाषा का अध्ययन करते रहे। ये दोनों यात्री तिब्बत नहीं गये थे। वहाँ किसी मठ में ५-६ वर्ष तक आराम से थे। युद्ध समाप्त होने के बाद दोनों पैदल पुनः भारत की ओर चले। लेकिन मार्ग भूलकर बर्मा निकल गये। यहाँ आकर उन्होंने लोगों को अपने अज्ञातवास की कहानी सुनाई। अधिकांश लोगों ने इस पर विश्वास नहीं किया। कुछ साहसी लोग इस बात पर तैयार हुए कि वे भी उस मठ को देखना चाहते हैं। दोनों जर्मन यात्री उनके साथ पुनः यात्रा पर निकल पड़े। जिस रास्ते से चलकर वे आये थे, उसी से गुजरे। गन्तव्य स्थान पर आकर उन्होंने देखा कि वही पहाड़, वही झरने, वृक्ष सभी कुछ हैं, पर मठ गायब है।"

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा––"देवात्मा हिमालय का रहस्य अज्ञात है। आज भी वहाँ अनेक योगी-महात्मा तपस्या कर रहे हैं जिनके बारे में हम नहीं जानते। शायद किनथूप का नाम सुना होगा। मैंकमोहन रेखा का उसी ने निर्धारण किया था। यद्यपि वह मठ में नहीं, किसी लामा के यहाँ कई वर्ष तक था।"

कविराजजी द्वारा कही गयी कहानी सुनने के बाद इस सम्बन्ध में कई कहानियाँ पढ़ने में आयी। इनमें योग सम्बन्धी एक रचना को पढ़ने के बाद मेरी धारणा पक्की हो गयी कि हिमालय में आज भी ऐसे अनेक संत हैं जो योग के द्वारा चमत्कार दिखाते हैं।

काश्मीर में एक ब्राह्मण बालक का जन्म हुआ। यह १९०५ ई० की घटना है। आगे चलकर किसी कारणवश बालक ने मुस्लिम-धर्म ग्रहण कर अपना नाम खुदाबख्श रखा। वह श्रीनगर में एक स्थान पर नौकरी करता था। उसने अपने बारे में लिखा है––

"नौकरी करते हुए भी मुझे योग के चमत्कारों से परिचय करने की इच्छा बराबर बनी रही और इस बीच सन् १९२२ में मुझे हरिद्वार के एक योगी का पता चला।"

"मैं उनके पास गया और उनसे शिक्षा ग्रहण करने लगा। प्रारंभ में उन्होंने मुझसे कुछ श्वास और आसन सम्बन्धी क्रियाएँ करानी शुरू की। मैं भी उनके निर्देशानुसार सभी क्रियाएँ करता रहा। कुछ दिनों बाद मैंने उनसे निवेदन किया कि मुझे ऐसी कोई क्रिया बतायें जिसके जरिये मस्तिष्क की शक्ति बढ़ा सकूं।"

"पहले तो उन्होंने मुझसे कहा––'शरीर के नियंत्रण से मस्तिष्क की भी शक्ति स्वतः बढ़ेगी।' मगर जब मैंने उनसे कहा कि मैं दोनों शक्तियों को साथ-साथ प्राप्त करना चाहता हूँ और शारीरिक-शक्ति पर अधिक समय बिताना नहीं चाहता तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उन्होंने मेरा शिक्षा क्रम बदल दिया। नयी क्रिया बताते हुए उन्होंने कहा--'इनसे चेतन मन पर तुमको नियंत्रण प्राप्त हो जायगा।'

"यह 'चेतन' शब्द मुझे अजीब लगा। मेरे पूछने पर गुरुदेव ने कहा कि मनुष्य के दो मन होते हैं। एक चेतन और दूसरा अचेतन। मनुष्य का चेतन मन बड़ा भ्रामक होता है। उस भ्रामक मन को नियंत्रण करने से मनुष्य का मस्तिष्क ऐसी क्रियाएँ कर सकता है जिस पर कोई भी इन्सान जल्दी विश्वास नहीं कर सकता।"

"प्रत्येक दिन संध्या के समय मैं वह प्रयोग करता था। ढाई वर्षों तक प्रयोग करने का फल निकला कि मैं हरिद्वार में बैठे-बैठे दो मिनट तक अपने उस भाई को देख सकता था जो काश्मीर में था।"

आगे चलकर खुदाबख्श ने ब्रिटेन तथा युरोप के कई देशों में अनेक चमत्कारों के प्रदर्शन किया। वहाँ की जनता, वैज्ञानिक और डाक्टर उसके करिश्मे देखकर चकित रह गये जबकि उसे योग की साधारण जानकारी थी। ऐसी हालत में महान योगी कितने साधन सम्पन्न होते हैं, इसका अन्दाजा अनायास लगाया जा सकता है।

× × ×

एक अर्से के बाद पुनः पाल ब्रंटन की पुस्तक पढ़ने के लिए मंगवायी। पाल ब्रंटन के भारत आने का एक मात्र उद्देश्य था--"यहाँ के योगियों के बारे में जानकारी प्राप्त करना। स्वामी विशुद्धानन्द से किये साक्षात्कार के बारे में उन्होंने लिखा है--

"स्वामीजी ने मुझे पास बुलाया। मैं उनकी गद्दी के निकट बैठ गया।

उन्होंने मुझसे पूछा--"मेरी कोई करामात देखना चाहते हो?"

मैंने कहा--"जी हाँ, आपका बड़ा आभारी हूँगा।"

"अपना रेशमी रूमाल दो। रेशमी हो तो अच्छा है। जैसी खुशबू चाहते हो, पा सकते हो। केवल एक आतशी शीशा और सूर्य का प्रकाश चाहिए।

सौभाग्य से मेरी जेब में रेशमी रूमाल निकल आया। मैंने उसे जादूगर के हाथ में दिया। उन्होंने एक आतशी शीशा निकालकर कहा--"मैं इसमें सूर्य की किरणें केन्द्रीभूत करना चाहता हूँ। कहिये कौन सी सुगंध चाहिए?"

"क्या आप बेले की सुगंधि पैदा कर सकते हैं?"

उन्होंने कुछ ही पलों में रूमाल वापस दिया तो उसे लेकर सूंघा। उसमें बेले की सुगंध थी। रूमाल को मैंने बड़े गौर से देखा। नमी का कहीं नाम तक नहीं था। कोई इत्र छिड़का गया हो, ऐसी बात भी नहीं थी। मैं हैरानी से उनकी ओर देखने लगा। इस बार मैंने गुलाब की गंध चाही। प्रयोग करने के बाद जब रूमाल वापस मिला तब उसमें गुलाब की खुशबू थी। इस बार मैं बड़े गौर से उनकी क्रियाओं को देख रहा था, पर मुझे कोई करामात नजर नहीं आयी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैंने प्रयोग किये जानेवाले काँच को भी हाथों में लेकर देखा।। वह एक मामूली काँच था। तार के ढाँचे में बँधा था। उसमें संदेह का कोई स्थान नहीं था। यहाँ यह बता दूँ कि मैं वहाँ अकेला नहीं था। प्रेक्षकों में छह-सात व्यक्ति मौजूद थे। कविराजजी ने बातचीत के सिलसिले में कहा––"गुरुदेव मुझे अद्‌भुत योग-विभूति दिखाना चाहते हैं जिसे बहुत कम लोग कर पाते हैं। इसके लिए कड़ी धूप की जरूरत होती है। आप किसी दिन दोपहर के वक्त आइये तब आपको वह चमत्कार दिखाया जायगा। तत्काल मुरदे को जिन्दा करके आपको दिखाया जायगा।"

घर आकर मैंने वह रूमाल कई सज्जनों को दिखाया। सभी को खुशबू आती मालूम पड़ी। इसलिए इन सारी बातों को सम्मोहन-विद्या कहकर एक चुटकी में उड़ा नहीं दे सकता था। न इसे छल-कपट ही कहकर मैं तुष्ट हो सकता था।

दूसरे दिन मैं जादूगर के घर गया। उन्होंने मुझे पहले ही बता दिया था कि वे छोटे जानवरों को जिला सकते हैं। ऐसा प्रयोग वे केवल चिड़ियों पर करते हैं।

एक गौरैया को पकड़कर उसकी गर्दन मरोड़ डाली गयी। एक घंटे तक उसकी लाश मेरे सामने पड़ी रही ताकि यह विश्वास हो जाय कि वास्तव में वह मर गयी है। एक भी ऐसा चिह्न न था कि हमें उसके जीवित होने का भ्रम हो। कुछ देर बाद जादूगर ने काँच निकाला और सूर्य की किरणों को चिड़िया की आँखों पर केन्द्रित कर दिया। कुछ देर तक कोई विशेषता नजर नहीं आयी। वृद्ध जादूगर अपने विचित्र प्रयोग में लगे रहे। उनका चेहरा निर्लिप्त था। अचानक ओंठ खुले और किसी अजीब भाषा में मंत्र पढ़ने लगे। थोड़ी देर बाद चिड़िया की लाश कुछ-कुछ हिलने लगी।

मैंने मरणासन्न कुत्ते को इस प्रकार झटका खाते देखा है। धीरे-धीरे वह पंख फड़फड़ाने लगी और फिर बंगले के पेड़ की डाल पर जा बैठी।

यह सारी घटना इतनी गजब की मालूम होने लगी कि मैं एक दम चकित होकर अपने दिमाग को ठिकाने पर लाने की चेष्टा करने लगा। मैं अपने में खोया हुआ था कि अचानक एक बात प्रकट हुई जिसने मुझे चौंका दिया। वह गौरैया फिर नहीं उड़ी। मरकर हमारे पैरों के पास गिर पड़ी। मैंने गौर से देखा। वह अब सचमुच मर गयी थी।

मैंने जादूगर से प्रश्न किया––"इसको और कुछ समय तक जीवित रख सकते हैं?"

उन्होंने कहा––"अभी तो मैं इससे अधिक नहीं दिखा सकता।"

कविराजजी ने कहा––"विशुद्धानन्दजी अपने भावी प्रयोगों से और अधिक आशा रखते हैं। वे और भी विचित्र बातें करके दिखा सकते हैं।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाद में मुझे मालूम हुआ कि वे हवा से अंगूर पैदा कर सकते हैं, शून्य से मिठाइयाँ मँगा सकते हैं। यहाँ की सामग्री तिब्बत भेज सकते हैं। मुरझाये फूलों को हरा-भरा कर सकते हैं।

अचानक उन्होंने एक ऐसी बात कह डाली जिसकी मुझे तनिक भी आशा नहीं थी। उन्होंने कहा—"जब तक मुझे तिब्बत स्थित गुरु से अनुमति प्राप्त नहीं होगी तब तक मैं यदि चाहूँ भी तो तुमको दीक्षा नहीं दे सकता। इसी शर्त पर मुझे काम करना पड़ता है।"

क्या स्वामीजी मेरे मन की बात ताड़ गये? मैंने उनकी ओर गौर से देखा। उनके उन्नत ललाट पर कुछ अस्पष्ट सिकुड़न थी।

मैंने उनसे पूछा—"आपके गुरु यदि सुदूर तिब्बत में हैं तो आप उनसे अनुमति कैसे ले सकते हैं?"

उन्होंने जवाब दिया—"हम दोनों के बीच आत्मिक-जगत् में व्यवहार अच्छी तरह चलता है।"

इसके बाद पाल ब्रंटन ने कई महत्वपूर्ण प्रश्न किये जिनका जवाब स्वामीजी ने दिया। वस्तुतः पाल ब्रंटन ने जिन योगियों की चमत्कारपूर्ण घटनाएँ देखी या जिनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ, उनके बारे में निष्कपट भाव से उल्लेख किया है। जो लोग धूर्त नजर आये, उन्हें बख्शा नहीं।

× × ×

बंगाल का वर्धमान जिला साधकों के लिए पवित्र भूमि है। इस जिले में अनेक मंदिर तीर्थस्थल बन गये हैं। इसी जिले के बंडुल गाँव में श्री अखिल चट्टोपाध्याय सपरिवार रहते थे। इनकी पत्नी का नाम श्रीमती राजराजेश्वरी देवी था। कुलीन ब्राह्मण होने के कारण पूरा परिवार देव-द्विजों के प्रति भक्ति करते और पूजा-पाठ बराबर करते रहते थे।

२२ मार्च, सन् १८५६ को राजराजेश्वरी देवी की कोख से एक पुत्र ने अवतार लेकर माँ के नाम को सार्थक बनाया। माता-पिता ने नवजात शिशु के स्वभाव को देखते हुए उसका नाम रखा—भोलानाथ। बालक अभी छह महीने का भी नहीं हुआ था कि उसके सिर पर से पिता का साया उठ गया। फलतः बालक की सारी जिम्मेदारी माँ पर आ गयी। माँ से अत्यधिक स्नेह पाने के कारण बालक कट्टर मातृभक्त बन गया।

बड़े होने पर भोलानाथ अक्सर कहा करते थे—"मेरे आध्यात्मिक-जीवन की उन्नति माँ के आशीर्वाद से हुई है।"

बचपन से ही ईश्वर-भक्त होने के कारण भोलानाथ सर्वदा पूजा-पाठ में लगा रहता था। यहाँ तक कि 'होनहार बिरवान होत चिकने पात' कहावत के अनुसार भोलानाथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बचपन से ही अपना चमत्कार दिखाने लगा था। हैजा से पीड़ित अपनी माँ को उन्होंने बचाया था।

तेरह वर्ष की उम्र तक भोलानाथ दिगम्बर रहते थे। अगर उन्हें डाँट-डपटकर धोती पहना दिया जाता था तो उसे दान कर देते थे। भोलानाथ को नंगा देखकर जब चाचाजी फटकारते तब वह कहता—"धोती न पहनकर अगर उलंग रहता हूँ तो क्या दोष है ? व्यर्थ के आवरण की क्या जरूरत है।"

कहा जाता है कि कभी-कभी जीवन की दुर्घटनाएँ वरदान बनकर आती हैं। इटली का 'द' एंजलो यदि नटबाजी में न गिरता और उसके मस्तिष्क को गहरी चोट न लगती तो वह साधारण नट बना रहता। इस दुर्घटना के कारण वह अपने स्पर्श से गूंगे को आवाज, बीमारों को स्वस्थ बनाने लगा। यह चमत्कार उसे ईश्वर से प्राप्त हुआ था।

ठीक इसी प्रकार एक दिन भोलानाथ अपने घर में दो तल्ले से नीचे उतर रहा था तब सीढ़ी के नीचे सोते हुए कुत्ते ने उसे काट लिया। वह कुत्ता पागल था। इस दुर्घटना के कारण घर में तहलका मच गयी। बड़े भाई स्वयं डाक्टर थे। उनके इलाज से कोई लाभ नहीं हुआ।

उन दिनों चन्दन नगर स्थित गोंदल पाड़ा में एक सज्जन पागल कुत्ते के काटे मरीजों का इलाज करते थे। उनका इलाज होने लगा। यह इलाज भी बेकार सिद्ध हुआ। दिन-प्रति-दिन भोलानाथ का कष्ट बढ़ता गया। बाद में लोग उसे हुगली ले आये। यहाँ के बड़े-बड़े डाक्टरों को दिखाया गया। लेकिन मर्ज ठीक नहीं हुआ।

घर के लोगों ने एक प्रकार से भोलानाथ के जीने की आशा छोड़ दी। उन्हें अब उनकी इच्छा के अनुसार घूमने-फिरने की आजादी दे दी गयी थी। एक दिन भोलानाथ गंगा तट पर उदास बैठा था। बीच नदी में एक संन्यासी स्नान कर रहे थे। सहसा एक विचित्र दृश्य देखकर भोलानाथ अवाक् रह गया। संन्यासी जब स्नान के लिए जल में गोता लगाते तब नदी शांत रहती और ज्योंही ऊपर निकलते त्योंही जलस्तंभ का दृश्य उपस्थित हो जाता। उनके नदी के बाहर आते ही जलस्तंभ गायब हो जाता।

कई बार यह दृश्य देखकर भोलानाथ उत्सुकतावश नदी के किनारे आकर खड़ा हो गया। स्नान से निवृत्त होकर संन्यासी जब तट पर आये तब उनकी दृष्टि भोलानाथ पर पड़ी। पता नहीं, उन्हें कैसे मालूम हो गया कि भोलानाथ को कुत्ते ने काटा है।

उन्होंने कहा—"बालक, मैं समझ रहा हूँ। कुत्ते के विष से तुम्हें बड़ा कष्ट हो रहा है। घबराओ मत। अभी दवा देता हूँ। कष्ट कम हो जायगा।"

इतना कहने के बाद संन्यासी ने भोलानाथ के सिर पर हाथ रखा। उनके स्पर्श से भोलानाथ ने अनुभव किया कि उसकी सारी पीड़ा में कमी हो गयी। थोड़ी देर बाद

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जंगल से कोई जड़ी लाकर उसे दी और कहा--"अब तुम घर चले जाओ। इससे शाम तक तुम्हारा रोग दूर हो जायगा।"

उसी दिन शाम को भोलानाथ ने अनुभव किया कि अब उसे कोई कष्ट नहीं है। रात को अपनी माँ से संन्यासी की सारी घटना कहने के पश्चात् उसने पैर के घाव को दिखाया। बेटा कष्ट से मुक्ति पा गया है, जानकर माँ को असीम आनन्द मिला।

दूसरे दिन भोलानाथ पुनः उसी घाट पर आया तो संन्यासी से मुलाकात हुई। उन्हें श्रद्धा पूर्वक प्रणाम करने के बाद भोलानाथ ने कहा--"आपकी कृपा से मुझे नया जीवन प्राप्त हुआ है। मेरे घर के लोग निराश हो चुके थे। आज से यह शरीर आपका है। मेरा निवेदन है कि मुझे दीक्षा देकर आप मुझे अपनी सेवा में रख लीजिए।"

संन्यासी ने कहा--"वत्स, मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। तुम्हारे जो गुरु हैं, वे ही तुम्हें ठीक समय पर दीक्षा देंगे। अभी वह समय नहीं आया है। अभी तुम्हें मैं एक आसन बता दे रहा हूँ। साथ ही एक बीज मंत्र भी दूँगा। आसन बराबर करते रहना और बीज मंत्र का जप करना। इससे तुम्हारा शरीर शुद्ध हो जायगा। जिस दिन तुम्हारे गुरु तुम्हें दीक्षा देंगे, उसी दिन से तुम उन्नति करोगे और शीर्ष स्थान प्राप्त करोगे। तुम्हें इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस समय मैं गंगा सागर जा रहा हूँ। फिर कभी तुम्हें अपने साथ ले जाऊँगा।"

संन्यासी के जाने के बाद भोलानाथ घर वापस आ गया। पूर्ण रूप से स्वस्थ होने के बाद माँ ने उसे उच्चशिक्षा के लिए शहर भेज दिया। वर्धमान शहर के मेस में वह रहने लगा।

कुछ दिनों बाद अपने एक सहपाठी के अस्वस्थ होने पर बाजार से कुनैन खरीदने के लिए विश्वरूप नामक दुकानदार के यहाँ आया। उसने देखा कि एक मुसलमान युवक किसी असाधारण संन्यासी के बारे में अद्भुत बातें लोगों को सुना रहा है।

जलस्तंभ की घटना सुनते ही भोलानाथ को विश्वास हो गया कि यह वही संन्यासी है जिनकी कृपा से उसे जीवन-दान मिला है। उक्त मुसलमान युवक से पूछने पर पता चला कि उसने उक्त संन्यासी को ढाका में देखा था। अभी तक वहीं हैं। उक्त संन्यासी से मिलने के लिए भोलानाथ का हृदय व्याकुल हो उठा। वर्धमान से ढाका काफी दूर है। दूसरे दिन गाँव जाकर ढाका जाने के लिए माँ से अनुमति माँगी।

बेटे का उद्देश्य समझकर माँ ने आशीर्वाद देते हुए कहा--"जिन्होंने तुम्हें नया जीवन दिया है, उनसे मिलने जाओ, यह तो हर्ष की बात है। मैं आशीर्वाद देती हूँ, भगवान् तुम्हारा मंगल करें।"

मेस में भोलानाथ के साथ हरिपद नामक एक छात्र रहता था। भोलानाथ की जबानी उनकी प्रशंसा सुन चुका था। वह भी भोलानाथ के साथ ढाका रवाना हो गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ढाका आकर दोनों युवक सरगर्मी के साथ संन्यासी महाराज को खोजने लगे। एक दिन रमना के मैदान में अचानक उनके दर्शन हो गये।

दौड़कर उनके चरणों पर गिरते हुए भोलानाथ ने कहा--"महाराज, अब मुझे ग्रहण कर लीजिए। जब तक आप हमें ग्रहण नहीं करेंगे तब तक मैं आपको नहीं छोड़ूंगा।"

संन्यासी ने कहा--"यह तो ठीक है, पर पहले यह बताओ कि तुम अकेले न आकर इस बालक को क्यों साथ ले आये हो?"

भोलानाथ ने विनय के साथ कहा--"महाराज, यह मेरा सहपाठी है। इसकी भी इच्छा है कि दीक्षा लेकर संन्यास जीवन अपनाऊँ।"

कुछ देर मौन रहने के बाद संन्यासी ने कहा--"अच्छा, एक बात बताओ। क्या तुम दोनों दुर्गम-पथ पर चल सकते हो? बालक हो, इसलिए पूछ रहा हूँ। नदी-नाले जंगल-पहाड़ पार करने पड़ेंगे। भूख को सहन करना पड़ेगा। अगर तुम लोगों में इतना साहस हो तो शाम को यहीं पर पुनः मिलना।"

भोलानाथ ने हरिपद की ओर प्रश्न सूचक दृष्टि से देखा। उसने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दी। भोलानाथ तो पहले से ही तैयार था। दिन भर इधर-उधर चक्कर काटने के बाद दोनों शाम को उसी जगह पर आकर संन्यासी के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ देर बाद संन्यासी महाराज आये और दोनों बालकों की आँखों पर पट्टियाँ बाँधते हुए बोले--"अब चुपचाप मेरे सहारे तुम लोगों को पैदल चलना होगा।"

दोनों बालक संन्यासी के दोनों तरफ हाथ पकड़कर चलने लगे। कब तक चलते रहे, इसका अनुभव उन्हें नहीं हुआ। जब उनकी आँखों की पट्टियाँ खोली गयीं तब उन लोगों ने देखा--सबेरा हो गया है। चारों ओर निबिड़ जंगल, पहाड़ी स्थान, सामने कोई मंदिर है जहाँ दर्शनार्थी जा रहे हैं।

संन्यासी ने कहा--"अब तुम लोग यहीं विश्राम करो। मैं कुछ दिनों बाद आकर तुम्हें अन्यत्र ले चलूंगा। डरने की कोई बात नहीं। सारी व्यवस्था यहाँ है।"

⊠ ⊠ ⊠

संन्यासी के जाने के बाद दोनों यह पता लगाने लगे कि इस वक्त वे कहाँ आ गये हैं। पूछने पर पता चला कि इस स्थान का नाम विंध्याचल है। सामने का मंदिर अष्टभुजा देवी का है। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ कि एक रात में ढाका से इतनी दूर पैदल कैसे आ गये। मार्ग में नदी-नाले पहाड़ आदि कुछ भी पार नहीं करने पड़े। कोई परेशानी भी नहीं हुई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनजान स्थान, पास ही श्वापद संकुलों का भय, केवल इने-गिने लोग मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ते नजर आये। वे स्थानीय भाषा में बातें कर रहे थे। उनकी भाषा भी समझ में नहीं आ रही थी। रात भर भूखे-प्यासे पैदल तो वे चलते रहे। सबेरे नाश्ता भी नहीं मिला। भूख के कारण पेट में चूहे कूदने लगे। एक अनजाने भय से दोनों घबराने लगे।

कुछ देर बाद एक काला-सा आदमी हाथ में दो थालियाँ लिए इनके पास आता हुआ दिखाई दिया। लंबी चोटी, गले में जनेऊ, कमर में धोती लपेटे था। बालकों के सामने थालियाँ रखकर वह चुपचाप चला गया।

भोजन के पश्चात् दोनों को नींद आने लगी। थकावट के कारण गहरी नींद आ गयी। शाम के समय पुनः वही ब्राह्मण भोजन देकर चला गया। भोजन के बाद दोनों को इस बात की चिंता सताने लगी कि रात को कहाँ रहेंगे? रह-रहकर जंगल के भीतर से जानवरों की आवाजें आ रही थीं। भय के कारण दोनों की आँखों से आँसू निकल पड़े। भावुकतावश इस तरह चले आने का अफसोस होने लगा।

इसी समय पश्चिम दिशा में एक अपूर्व प्रकाश दिखाई दिया। वह ज्योतिर्मय प्रकाश धीरे-धीरे इनके पास आकर ठहर गया। उसमें से एक नारी मूर्ति प्रकट हुई। अभय मुद्रा में इन्हें आशीर्वाद देती हुई बोली—"तुम लोग इतना रो क्यों रहे हो? तुम लोगों के करुण क्रन्दन से मैं विचलित हो उठी और यहाँ चली आयी।"

भोलानाथ ने साहस के साथ पूछा—"माँ, आप कौन हैं? कहाँ रहती हैं?"

उस महिला ने कहा—"प्रकृति का रहस्य तुम लोगों के लिए दुर्बोध्य है। मैं कौन हूँ, अभी यह नहीं बताऊँगी। बस, इतना जान लो कि मैं तुम्हारी माँ की तरह हूँ और तुम दोनों मेरे पुत्र हो। मैं चाहे जहाँ भी रहूँ, तुम दोनों सर्वदा मेरे पास रहोगे। डरने की कोई बात नहीं है। जिस महापुरुष के साथ तुम लोग यहाँ आये हो, मैं उन्हीं के सम्प्रदाय की हूँ। अब अगर पुनः व्याकुल होगे तभी मैं आऊँगी। यों जब भी स्मरण करोगे तभी आ जाऊँगी।"

इतना कहकर वह महिला वहाँ से चली गयीं। बाद में पता चला कि उनका नाम उमा भैरवी था।

विंध्याचल में ५-६ दिन निवास करने के बाद सन्यासी महाराज आये और पहले की तरह उन दोनों की आँखों पर पट्टी बाँधकर एक आश्रम में ले आये। इन्हें इस आश्रम में रखकर पता नहीं, फिर कहाँ चले गये। इस आश्रम से पता चला कि उक्त संन्यासी का नाम भीमानन्द है। इस बार भीमानन्द आये तो इन दोनों बालकों को लेकर नुकली पहाड़ पर रहनेवाली श्यामा भैरवी माता के आश्रम में ले आये। यहाँ एक दिन ठहरने के बाद पुनः आँखों पर पट्टी बाँधकर आगे ले गये। सबेरे जब आँखों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर से पट्टी हटायी गयी तो उन दोनों ने अपने को एक अपूर्व स्थान पर देखा। कुछ दिन यहाँ निवास करने पर इन्हें पता चला कि इस स्थान का नाम ज्ञानगंज है। इस आश्रम के बारे में केवल कुछ सिद्ध महायोगी ही जानते हैं।

कुछ दिन यहाँ विश्राम करने के बाद एक दिन स्वामी नीमानन्द आये और दोनों बालकों को साथ लेकर अपने गुरुदेव पूज्यपाद महातपा के पास पहुँचे।

कहा जाता है कि पूज्यपाद महातपा महाराज की उम्र उन दिनों १२०० वर्ष के ऊपर थी। उनका कोई मठ नहीं है। वे अत्यन्त शक्तिशाली महात्मा हैं। तिब्बत में वे जहाँ रहते हैं, वहाँ एक गुफा है। इस स्थान पर राज राजेश्वरी देवी की पाषाण मूर्ति है।

योगियों की उम्र निस्संदेह काफी होती है। श्री पाल ब्रंटन की मुलाकात एक ऐसे योगी से हुई थी जिनके गुरु तिब्बत में रहते हैं। उनकी उम्र ४०० वर्ष थी। उन्होंने पानीपत (सन् १५२६ ई०) का प्रथम युद्ध और पलासी का युद्ध (सन् १७५७ ई०) स्वयं देखा था। वर्तमान काल में लोकनाथ ब्रह्मचारी तथा तैलंग स्वामी ३५० वर्ष तक जीवित थे।

हठयोग की साधना से दीर्घायु प्राप्त होती है। इससे शरीर सबल होता है। हठयोग की साधना के कारण ही हमारे यहाँ के योगी अपनी अतीन्द्रिय शक्ति को बढ़ाते हैं। इस बारे में महर्षि दत्तात्रेय का कथन है--

शोधनं दृढ़ता चैव स्थैर्यधैर्यंच लाघवम्।
प्रत्यक्ष निर्लिप्तंच घटस्य सप्त साधनम्॥

यह सप्त-साधन क्या है, इस पर टीकाकारों तथा योगियों ने कहा है--

(१) सप्त साधनों में शरीर-शोधन के लिए षट्कर्म करना पड़ता है। धौती, बस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति। इन क्रियाओं के बारे में महातंत्र में विस्तार से उल्लेख है।

(२) वृहत् तंत्र के अनुसार शरीर के निर्माण के लिए आसन (८४ प्रकार) करना चाहिए।

(३) स्थैर्य-प्राप्ति के लिए मुद्राएँ (२५ प्रकार) करना पड़ता है।

(४) धैर्य के लिए प्रत्याहार।

(५) शरीर को लघु बनाने के लिए प्राणायाम।

(६) प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए ध्यान-धारणा।

(७) निर्लिप्तता के लिए समाधिस्थ होना पड़ता है।

इन सप्त-साधनाओं में प्रथम पाँच साधकों के लिए अनिवार्य है। शेष दोनों क्रियाएँ केवल मन को एकाग्र करती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये सभी क्रियाएँ हठयोग की हैं। राजयोग के ध्यान, धारणा, समाधि अलग ढंग के होते हैं। हठयोग से शरीर स्वस्थ तथा दृढ़ होता है। इन साधनों के अलावा आहार, संयम, जितेन्द्रियता, नियमानुवर्तिता, यम तथा नियम का पालन करना पड़ता है।

यम के भी दस भेद हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, दया, ऋजुता, मिताहार और शौच।

इसी प्रकार नियम के दस भेद हैं। तपस्या, संतोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वरोपासना, वेदांत वाक्य श्रवण, लज्जा (असत् कर्मानुष्ठानों में) साधुबुद्धि, जप और होम।

हठयोग से नाना प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इसे योग-शक्ति कहा गया है। उदाहरण के लिए त्राटक-योग अभ्यास करने पर दृष्टि-शक्ति में वृद्धि होती है। काफी दूर रखी सामग्री या अंधेरे में छोटी वस्तु दिखाई देती है। यहाँ तक कि स्नायुओं, शरीर के इंद्रियों तथा प्राण में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाता है। प्रौढ़-योगी अट्ठारह वर्ष का किशोर सा दिखाई देने लगता है। यह शक्ति प्रत्येक मनुष्य के भीतर है जिसे वह योगाभ्यास के द्वारा विकसित कर सकता है। यह गुण पूज्यपाद लोकनाथ ब्रह्मचारी ने अर्जित किया था।

हठयोग के माध्यम से हरिदास साधु (राजा रणजीत सिंह के राज्य में) अद्भुत-शक्ति प्राप्त की थी। वे चालीस दिनों तक जमीन के भीतर समाधिस्थ रहे। ऊपर सशस्त्र पुलिस तथा सेना का पहरा था। वे अपने शरीर के किसी भी अंग को मनमाने ढंग से मोड़ लेते थे। यहाँ तक कि रबड़ की तरह खींचकर बढ़ा लेते रहे। लेकिन इससे परमार्थ की प्राप्ति नहीं होती। हठयोग के बाद उच्चस्तर के साधक राजयोग करते हैं।

हठयोग से स्वास्थ्य बनता है, शरीर सबल होता है, पर आध्यात्मिकता प्राप्त नहीं होती। अगर सबल स्वास्थ्य से आध्यात्मिकता प्राप्त होती तो अनेक पहलवान तथा जंगली जानवर इसे अनायास प्राप्त कर लेते। राजयोग तक पहुँचने के लिए हठयोग सीढ़ी मात्र है। उच्चस्तर के योगी इसे अपने सद्गुरु से प्राप्त करते हैं। सामान्य लोग उस स्तर तक नहीं पहुँच पाते। जब तक इन क्रियाओं का गुरु न मिले तब तक अधकचरे ज्ञानी या पुस्तकीय ज्ञान से यह सब क्रियाएँ नहीं करनी चाहिए वर्ना अनर्थ हो जाता है। लोग पागल तथा लकवे आदि के शिकार हो जाते हैं। जिस प्रकार हम बिजली के कार्यों को देखते हैं, पर उसे नहीं देख पाते, ठीक उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य में छिपी शक्ति है जिसे अनुभवी गुरु के माध्यम से जाग्रत किया जा सकता है।

× × ×

ज्ञानगंज में वर्षों तक भोलानाथ और हरिपद योग और विज्ञान की शिक्षा अपने गुरुओं से प्राप्त करते रहे। परमहंस भृगुराम से योग, परमहंस श्यामानन्द से चन्द्रविज्ञान,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सूर्य-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान आदि की शिक्षा ग्रहण करते रहे। इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी के लिए पंडित गोपीनाथ कविराज की 'श्री श्री विशुद्धानन्द प्रसंग' का अध्ययन आवश्यक है।

स्वयं महातपाजी ने इन दोनों बालकों के मस्तक पर हाथ रखकर शक्ति-संचार किया। बाद में दीक्षा देकर इन्हें वीज मंत्र दिया। इस प्रकार दोनों को ही पूज्यपाद महातपा ने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया।

जिस विज्ञान की शिक्षा इन्हें यहाँ दी जाती रही, उसके बारे में पंडित गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—"यह विज्ञान पश्चिमी जड़-विज्ञान नहीं है। 'विशिष्ट-ज्ञान' की शिक्षा यहाँ दी जाती हैं। जिसे जड़ और चेतन कहा जाता है। सूर्य ही सभी विज्ञानों का मूल स्वरूप है। सृष्टि, स्थिति और संहार सूर्य के अधीन है। इच्छाशक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रियाशक्ति का प्रसार सूर्य से ही होता है। योग का चरम उद्देश्य यही विज्ञान है। कहने का आशय यह है कि जिसे हम योग कहते हैं, वह भी एक प्रकार का विज्ञान है। केवल प्रणाली में भेद है। योग-मार्ग के विज्ञान और विज्ञान-मार्ग में योग एक दूसरे के सहायक हैं। चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान, स्वर-विज्ञान, देव-विज्ञान आदि सौर-विज्ञान के अन्तर्गत खण्ड-विज्ञान मात्र हैं।"

भोलानाथ और हरिपद ने अपनी असाधारण प्रतिभा के माध्यम से सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त की। इसके लिए उन्हें अक्लांत श्रम, असीम धैर्य और अध्यवसाय करना पड़ा था। इस प्रकार संयोग कम सुनने में आये हैं। दोनों युवकों को लगातार १२ वर्ष तक कठोर तप करना पड़ा था।

जिस प्रकार जीवन में सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य, फिर गृहस्थ, बाद में प्रौढ़ और अन्त में वृद्धावस्था आती हैं, ठीक इसी प्रकार योगियों को पहले ब्रह्मचारी, बाद में दंडी स्वामी बनना पड़ता है। चार साल दंडी स्वामी रहने के बाद दोनों ने संन्यास ग्रहण किया। ब्रह्मचारी साधना से उन्नीत होते ही गुरुदेव ने भोलानाथ को आज्ञा दी कि भारत के सभी तीर्थों का दर्शन कर आओ। तीर्थ-दर्शन के कारण भोलानाथ में विशेष विकास हुआ।

कविराजजी को बाबा ने एक बार अपने तपस्वी जीवन के बारे में कहा था—"जिन दिनों मैं गिरनार पर्वत पर था, उन दिनों तीन दिनों तक अनाहार था। पास में कहीं बस्ती नहीं थी जहाँ से भीख माँगकर पेट भरता। ब्रह्मचारी को शरीर-रक्षा के लिए उत्कट-पुरुषाकार अवैध है, इसीलिए आहार-संग्रह के लिए कहीं दूर नहीं जा सकता था। लाचारी में इष्ट मंत्र जपते हुए गुफा के भीतर जाकर सो गया। मुझे लगा कि अब अनाहार के कारण मृत्यु अवश्य हो जायगी। इसके कई कारण हैं। एक तो पथहीन घोर वनभूमि जहाँ चारों ओर जंगली जानवर विचरण कर रहे हैं। ऐसे स्थान पर कोई पथिक भूलकर भी नहीं आयेगा। अगर कोई इधर आ भी गया तो उससे भीख माँगना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यर्थ है। मैं मन ही मन गुरु प्रदत्त इष्ट नाम जपना शुरू किया। थोड़ी ही देर में नींद आ गयी। जब मेरी आँखें खुली तब अपने सामने का दृश्य देकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। मैंने देखा——दस-पन्द्रह मिट्टी के बरतनों में नाना प्रकार के सुस्वादु भोजन रखे हुए हैं। खीर, चिउड़ा, लाई, तरह-तरह की मिठाई, फल, शरबत आदि। यह सब देखकर मैं जगदम्बा की कृपा समझकर उन्हें मन ही मन स्मरण करते हुए अश्रुपात करने लगा।"

संन्यास-जीवन समाप्त कर लेने के बाद गुरुदेव ने भोलानाथजी को घर जाने की आज्ञा दे दी। संन्यासियों को जीविका के लिए कोई कार्य नहीं करना चाहिए। जब यह प्रश्न गुरुदेव के सामने आया तब उन्होंने भोलानाथ से कहा कि तुम जीविका के लिए चिकित्सा-कार्य कर सकते हो।

संन्यास ग्रहण करने के बाद भोलानाथ ने अपना नाम विशुद्धानन्द रख लिया। वे ज्योतिष विज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे। उनसे चिकित्सा करने के लिए जितने मरीज आते थे, सबसे पहले वे ज्योतिष विज्ञान के जरिये यह जानकारी प्राप्त कर लेते थे कि रोग असाध्य तो नहीं है। अगर किसी रोगी की मृत्यु होने वाली होती तो उसका इलाज नहीं करते थे। रोगी भी समझ जाता था कि उसका रोग अब दूर नहीं होगा।

ज्योतिष-विज्ञान पर उनका असाधारण अधिकार था। एक बार एक सज्जन बाबा का दर्शन करने आये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा——"बाबा, मैं सोच रहा हूँ कि एक बार आपको अपनी जन्मकुंडली दिखाऊँ। अगली बार आऊँगा तो साथ ले आऊँगा।"

विशुद्धानन्द ने कहा——"तुम्हें जन्मकुंडली लाने की जरूरत नहीं। तुम्हारी कुंडली तो मेरी कापी में तैयार रखी है।"

इतना कहने के बाद स्वामीजी एक कापी खोलकर उन्हें दिखाने लगे। भक्त को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि जीवन में प्रथम बार मैं बाबा के पास आया हूँ, इन्हें मेरा नाम-धाम, जन्म तिथि, राशि आदि की जानकारी कैसे हो गयी?

बाबा के शिष्य और डा० गोपीनाथ कविराज के घनिष्ठ मित्र डा० शोभाराम मेहता थे। इनके पुत्र डा० लक्ष्मण राम मेहता थे। पिता और पुत्र दोनों ही बाबा के शिष्य थे। एक बार कलकत्ता से चलते समय मुझे पता चला कि लक्ष्मण राम मेहता बाबा के आश्रम में जा रहे हैं। उन्होंने बाबा के बारे में अनेक कहानियाँ सुनायी।

× × ×

एक बार विशुद्धानन्दजी गुस्करा से वर्धमान नगर में श्री उपेन्द्र चौधुरी के यहाँ आये। उपेन्द्र बाबू उन दिनों वहाँ पुलिस सब इंस्पेक्टर थे। इनका सबसे बड़ा अफसर था——आर० एफ० गाइज। वह बहुत ही कठोर प्रकृति का व्यक्ति था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बातचीत के सिलसिले में बाबा ने एक दिन उपेन्द्र बाबू से कहा––"आज तुम्हें एक आश्चर्यजनक घटना दिखाऊँगा। सुना है कि तुम्हारे बड़े अफसर तुमसे काफी नाराज रहता है। हर वक्त तुम्हारा अनिष्ट करने को सोचता है।"

उपेन्द्र बाबू ने मुरझाये हुए स्वर से कहा––"हाँ बाबा, मैं तो उससे इतना डरता हूँ कि उसके सामने जाने से कतराता हूँ, पर कभी-कभी लाचारी में जाना पड़ता है।"

बाबा ने कहा––"आज तुम एक काम करो। अपने प्रमोशन के लिए उसे एक आवेदन पत्र दे दो।"

इतना सुनते ही उपेन्द्र बाबू ने कहा––"अरे बाप रे! तब तो वह मुझे जिन्दा ही कच्चा चबा डालेगा। यह मुझसे नहीं होगा।"

बाबा ने कहा––"डरने की कोई बात नहीं है। आज मेरे लिए थोड़ा-सा अपमान सह लेना। लेकिन अपना आवेदन पत्र आज ही दे देना।"

अब गुरुदेव की आज्ञा मानने के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं था। उपेन्द्र बाबू आवेदन पत्र अपने साथ लिखकर ले गये। आफिस के कागजों को पेश करने के बाद धीरे से अपना आवेदन पत्र 'जय गुरु' कहकर सामने रख दिया। आवेदन पत्र को लेकर साहब देर तक पढ़ते रहे। बाद में सिर झुकाकर एक पेज में अपनी सम्मति लिखने के बाद उसे पढ़कर सुनाया।

साहब की सम्मति सुनकर उपेन्द्र बाबू गदगद हो उठे। साहब ने कहा––"तुम्हारे लिए डबल प्रोमोशन की सिफारिश कर दी है। अगर इससे काम हो जाता है तो ठीक, वर्ना कुछ दिनों बाद मैं उस पोस्ट पर जाऊँगा तब मैं स्वयं तुम्हें प्रोमोशन दूँगा।"

उपेन्द्र बाबू के लिए यह एक अविश्वसनीय घटना थी। वस्तुतः बाबा आगमजानी थे। इस कार्य के लिए उन्होंने कोई चमत्कार नहीं किया था। महापुरुष जान बूझकर इच्छा-शक्ति का प्रयोग नहीं करते। इससे परमार्थ की हानि होती है।

इस बारे में एक बार बाबा ने अपने एक भक्त से कहा था––"विभूति प्रदर्शन करके तुम लोगों की श्रद्धा जाग्रत करूँ या अपने ऐश्वर्य की तुम सब पर धाक जमाऊँ––यह मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं केवल यही चाहता हूँ कि इसे देखकर शिष्य तथा भक्तगण महाशक्ति में, ईश्वर में, धर्म में, संतों में, भक्ति भावना रखें। वे धर्मपरायण हों, सन्मार्ग पर चलें। पूजा-पाठ करें। विभूति-प्रदर्शन करना एक प्रकार से अपराध है, क्योंकि जो लोग इसके अधिकारी नहीं हैं, उनके सामने प्रदर्शन करना पड़ता है।"

लोक कल्याण के लिए योगी कभी-कभी योग-विभूति (चमत्कार) दिखाते हैं, परन्तु अपनी शक्ति दिखाने या किसी लाभ के लिए ऐसा नहीं करते। इससे उनकी शक्ति क्षय हो जाती है। इस सम्बन्ध में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने लिखा है––"ऋषि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और महापुरुषों के जीवन चरित्र से यह ज्ञात होता है कि उनके जीवन में अनेक अलौकिक घटनाएँ हुई हैं। इन घटनाओं पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। कहीं-कहीं साम्प्रदायिक या व्यक्तिगत कारणों से महापुरुषों का जीवन विकृत हो जाने पर भी, सभी स्थानों में ऐसी बातें हुई है, ऐसा सोचना गलत होगा। फलतः इन घटनाओं के कारण-निर्णय के बारे में इच्छा-शक्ति के प्रयोग की आशंका लोगों के मन में उदित हो सकती है। वस्तुतः यह बात नहीं है। जो वास्तव में योगी हैं, जो अपनी ऐशी इच्छा-शक्ति के साथ अपनी व्यक्तिगत इच्छा-शक्ति को संयत कर अभिमान-रहित हुए हैं, ऐसे योगी कभी स्वार्थ-साधना के लिए इच्छा-शक्ति का प्रयोग नहीं करते। ज्ञानी कभी परमार्थ की हानि कर स्वार्थ के प्रति आकृष्ट नहीं होते। एक जरूरी बात है। वे लोग अधिकांश समय परमात्मा के साथ युक्त रहते हैं। उस वक्त उनकी इच्छाएँ पृथक नहीं होती। उस स्थिति में यदि उनमें इच्छाशक्ति उत्पन्न होती है तो उसे ऐश्वरिक इच्छा समझना चाहिए। इसके निमित्त उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। क्योंकि उस स्थिति में वे ऐश्वरिक-सत्ता के साथ अभेद सम्बन्ध बनाये रखते हैं। लेकिन जब वे युक्त स्थिति में न रहकर, युंजान स्थिति में रहते हैं उस समय क्षीण होने पर भी उनकी व्यक्तिगत इच्छा उभर सकती है।

गुरुवर विशुद्धानन्दजी के वर्धमान आश्रम के कुछ नियम हैं। इन नियमों का पालन कड़ाई से होता है। इन नियमों के निर्माता महागुरु भृगुराम परमहंस हैं। इन नियमों में एक नियम यह है—"किसी की कोई बीमारी या अन्य किसी बात पर इच्छा-शक्ति का प्रयोग मत करना। अगर तुमने ऐसा किया तो तुम्हारी क्रिया नष्ट हो जायगी।"

कोई काम गलत ढंग से न हो, इसलिए ऐसे नियम बनाये गये हैं। इच्छा कामना विशेष है। जिस प्रकार यह अध्यात्म-जगत का सर्व प्रधान मित्र है, उसी प्रकार प्रधान शत्रु भी। परमार्थ के लिए जो भी कामना की जाय, वह मंगलकारी हो। विषय कामना आदि सारे अनर्थों की जड़ है। परमार्थ के अलावा शेष सभी स्वार्थ है। यही विषय है। विषय की कामना उत्पन्न होते ही चित्त विषय के साथ सम्बन्धित हो जाता है, उसका कुछ अंश सलग्न रहता है, फलस्वरूप चित्त विक्षिप्त हो जाता है। लेकिन आत्म-कामना के कारण चित्त का विक्षेप दूर हो जाता है, एकाग्रता आती है, अन्त में चित्त निरुद्ध होकर विशुद्ध चैतन्य से साक्षात्कार करता है।"

× × ×

सन् १९२९-३० की घटना है। कविराजजी की पत्नी सख्त बीमार हो गयीं। गुरु भाई डा० शोभाराम का इलाज चलता रहा। इसके अलावा अन्य कई डाक्टरों का का इलाज हुआ, पर लाभ नहीं हो रहा था। इसी बीच लोगों ने कविराजजी को सलाह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दी--"आप अपने गुरुजी को पत्र क्यों नहीं लिखते ? उनकी आप पर कृपा है। अगर वे दया करें तो आपकी पत्नी अच्छी हो जायेंगी।"

कविराजजी इसके लिए तैयार नहीं हुए। ऐसे कर्मों के लिए वे गुरुदेव को कष्ट नहीं देना चाहते थे।

दूसरे दिन पत्नी का हालचाल पूछने के लिए ऊपर पत्नी के कमरे में आये तो उन्हें पद्म फूल की महक महसूस हुई। समझते देर न लगी कि गुरुदेव सूक्ष्म रूप में आये थे। गुरुदेव इस प्रकार जहाँ पहुँचते थे, वहाँ इस प्रकार की गंध हवा में तैरती थी। गुरुदेव की गंध पाकर कविराजजी ने जयगुरु कहकर प्रणाम किया। उसी दिन से पत्नी ठीक होने लगीं।

तीसरे दिन कविराजजी नीचेवाले कमरे में बैठे थे। अचानक घर के नौकर ने आकर सूचना दी कि माँ आपको ऊपर बुला रही हैं।

कविराजजी घबराये हुए ऊपर आये और पत्नी से पूछा--"क्या बात है ? तबीयत तो ठीक है न ?"

पत्नी ने कहा--"अभी कुछ देर पहले गुरुदेव यहाँ आये थे।"

कविराजजी ने पुनः पद्म फूलों की महक महसूस करते हुए कहा--"गुरुदेव तो कल भी कहाँ आये थे तभी तो तुम स्वस्थ दिखाई दे रही हो। बहरहाल अपनी बात कहो।"

पत्नी ने कहा--"मैं बाथरूम से जब वापस आने लगी तब कमजोरी के कारण गिरने ही जा रही थी कि अचानक स्थूल शरीर में आकर गुरुदेव ने मुझे पकड़ लिया। उनकी दाढ़ी मेरे शरीर को स्पर्श करती रही। चलते समय दवा की दस गोलियाँ मुझे दे गये और खाने की विधि बता गये, पर मैं अत्यधिक प्रसन्नता के कारण भूल गयी।"

कविराजजी ने कहा--"जब सेवन-विधि भूल गयी तब खाओगी कैसे ? मैं गुरुदेव को पत्र लिखकर पूछ लूंगा।"

कुछ दिनों बाद कविराजजी कलकत्ता गये। वहाँ बातचीत के सिलसिले में उन्होंने पूछा--"गुरुदेव, मेरी एक शंका का निवारण कर दीजिए। आप कलकत्ता में रहते हुए काशी कैसे पहुँच गये। वहाँ जाकर आपने मेरी पत्नी की प्राण-रक्षा की। एक साथ दोनों जगह रहना कैसे संभव हुआ ?"

बाबा ने हँसते हुए कहा--"बहू बाथरूम में गिरने जा रही थी, ठीक उसी समय मैं मुंह धोने गया था। मैंने देखा कि बहू गिरने जा रही है तब मैंने उसे सहारा दिया।"

कविराज ने कहा--"मैंने अपनी पत्नी की बीमारी के बारे में कोई समाचार नहीं भेजा, फिर भी आप ५०० मील दूर बैठे कैसे उसके बारे में जान गये ?"

बाबा एक क्षण कविराजजी की ओर देखते रहे, फिर बोले--"तुमने योगी का अर्थ क्या समझा है ? योगी का अर्थ है--अखंड सत्ता के साथ नित्य युक्त होना। देश-काल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या किसी अवस्था में वे अवरुद्ध नहीं होते। मैं इसी शरीर से सर्वत्र तथा सर्वकाल में वर्तमान रहता हूँ। काशी तक पहुँचने में कोई असुविधा नहीं होती।"

महायोगी विशुद्धानन्दजी से जब प्रथम बार कविराजजी मिलने गये तब परमहंसजी ने इनकी ओर देखते हुए पूछा—"क्या तुम्हें हार्ट की बीमारी थी ? अभी तक तुम्हारे हार्ट को दुर्बल देख रहा हूँ ?"

यह सन् १९१८ की घटना है जब कि वे सन् १९१२ में पीड़ित हुए थे। डाक्टर भी बिना स्टीथिस्कोप लगाये या बिना एक्सरे चित्र के हार्ट के बारे में इस तरह बता नहीं पाते।

थोड़ी देर बाद परमहंसजी ने कहा—"चिन्ता की बात नहीं, दीक्षा लेने के बाद यह ठीक हो जायगा।"

दीक्षा लेने के बाद कविराजजी इस रोग से मुक्त हो गये थे। यह उन दिनों की घटना है जिन दिनों परमहंसजी हनुमानघाट पर रहते थे। यहाँ एक बार एक विचित्र घटना हो गयी थी। बातचीत के सिलसिले में एक सज्जन ने कहा—"हमारे धार्मिक ग्रंथों में इतनी कल्पित बातें लिखी गयी है कि उन पर आज के युग में विश्वास करना कठिन है। उदाहरण के लिए भगवान् विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति। अब कोई कैसे इस बात पर विश्वास कर सकता है ?"

बाबा ने कहा—"देखो, जो बात तुम लोगों की बुद्धि के परे हैं, अगोचर है, उसे अस्वीकार नहीं करना चाहिए। अगर तुम लोग नाभि से कमल का निकलना देखना चाहते हो तो मैं अभी इसी जगह दिखा सकता हूँ।"

लोगों को कुतूहल देखकर बाबा मसनद के सहारे पलंग पर लेट गये। इसके बाद धीरे-धीरे अपनी नाभि पर हाथ फेरने लगे। लोगों ने आश्चर्य से देखा कि नाभि में एक गड्ढा बन गया। देखते ही देखते उसमें से लाल कमल निकला। उसके गंध से कक्ष गमकने लगा।

बाबा ने कहा—"इस वक्त सूर्य की रोशनी कम है वर्ना यह कमल और बड़ा हो जाता।"

इसके बाद जिस प्रकार उनकी नाभि से कमल निकला था, ठीक प्रकार धीरे-धीरे उसमें प्रवेश कर गया। बाबा ने कहा—"इस प्रकार नाभि में अनेक कमल हैं। हमारे धार्मिक ग्रंथों में वर्णित बातें असत्य नहीं है।"

श्री रोहिणी कुमार चेल ने परमहंसजी से हुई पहली मुलाकात के बारे में लिखा है—"उन दिनों मैं कलकत्ता में रहता था। बहुत दिनों से मेरी इच्छा थी कि किसी सद्ब्राह्मण के चरणों का सहारा लूं। साधु-संन्यासियों के प्रति मेरे मन में श्रद्धा नहीं थी। मैं कल्पना करता था कि ऐसे ब्राह्मण की शरण में जाऊँगा जो संध्या-पूजा करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हों, आचारवान और संयमी हों। अगर कभी इस तरह के पंडित से मुलाकात हुई तो उन्हें अपना लूंगा।

ठीक इन्हीं दिनों श्री मनीन्द्र भट्टाचार्य नामक एक सज्जन से मेरा परिचय हुआ। उनकी जबानी परमहंसजी के बारे में अद्भुत बातें मालूम हुई। उन्होंने बताया कि भोलानाथ बाबू अद्भुत व्यक्ति हैं। वे एक ही समय में हम लोगों के साथ ताश खेलते हैं और बारहदरी में बड़े-बूढ़ों के साथ बातचीत करते हैं।

इस प्रकार की कई घटनाएँ उन्होंने सुनाई। इन घटनाओं को सुनकर मेरा कुतूहल बढ़ गया और मैंने निश्चय किया कि इनका दर्शन अवश्य करूँगा। भट्टाचार्य महाशय से भोलानाथजी का पता लेकर मैंने गुस्करा के पते पर जवाबी तार भेजा। मैंने तार में लिखा था--"मैं श्री चरणों का दर्शन करना चाहता हूँ। अभी आऊँ या नहीं, कृपया सूचित करें।"

गुस्करा से उत्तर आया--"अभी नहीं।"

यह जवाब पाकर मैं निराश हो गया, पर मेरा हृदय उतावला हो उठा। मैं तुरत गुस्करा रवाना हो गया। वहाँ पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि बाबा इस समय क्रिया कर रहे हैं। कुछ देर बाद जब आप बाहर आये तब आपके शरीर से पद्म फूलों की सुगंधि निकल रही थी। दोनों आँखें लाल और अपूर्व ज्योतिर्मय मूर्ति थी। मैं उनके समीप जाकर बैठ गया।

मेरी ओर नजर पड़ते ही बाबा ने पूछा--"क्यों जी, कब आये?"

मैंने कहा--"अभी-अभी आ रहा हूँ। आपके निषेध करने पर भी मेरा मन नहीं माना और चला आया।"

इतना कहने के बाद मैंने अपने झोले से अपनी और पत्नी की जन्मकुंडली निकाली। बाबा ने पूछा--"क्या निकाल रहे हो?"

मैंने कहा--"जन्म कुण्डली।"

बाबा तुरत उठकर भीतर गये और एक कापी लेकर वापस आये। मैंने आश्चर्य से देखा कि एक पृष्ठ पर मेरी पत्नी प्रभावती दासी का नाम जन्मकाल और समस्त फल लिखा है।

मैंने विस्मय से पूछा--"आपको मेरा नाम कैसे मालूम हो गया? मेरी पत्नी का नाम आपने कैसे जान लिया? मैं यहाँ आऊँगा, यह आपने कैसे मालूम किया? मैं स्वयं ही नहीं जानता था कि आज मैं यहाँ आ सकूँगा। ऐसी हालत में आप मेरी जन्मतिथि कैसे जान गये?"

उन्होंने हँसकर कहा--"मैंने तुम्हें यहाँ आने को मना किया था। फिर भी तुम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रवाना हो गये। जब यह बात मालूम हो गयी तब मैंने तुम दोनों की जन्म कुण्डली बना डाली। अब अपनी जन्म कुण्डली से मिलाकर जाँच लो।"

मैंने नक्षत्र-ग्रह सब कुछ मिलाया तो देखा कि सारी बातें ठीक है। केवल कुछ गलतियाँ थीं।

इस ओर बाबा का ध्यान आकर्षित करने पर उन्होंने कहा--"मेरी कुण्डली ठीक है। तुम्हारी कुण्डली में कई गलतियाँ हैं। अगर तुम्हारी कुण्डली वास्तव में ठीक होती तो तुम एक अवतारी पुरुष होते। तुम्हारी कुण्डली में जो जन्म समय लिखा है, अगर वह सही होता तो मैं स्वयं ही तुम्हारे पास जाता। तुम मेरे पास न आते। यह विलक्षण समय है।"

गुरुदेव के एक शिष्य श्री मुनीन्द्र मोहन कविराज ने अपने गुरुभाई श्री सूरज प्रकाश मुशरानी के बारे में लिखा है--"मुशरानीजी एक बार सख्त बीमार पड़े। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। मुशरानी के पिताजी ने व्याकुल होकर गुरुदेव को पत्र लिखा--"बाबा, बड़ी मुसीबत में हूँ। यदि मेरे घर आपका चरण-रज पड़े तो बड़ी कृपा होगी। बाबा ने जवाब दिया--"अच्छा, देखा जायगा।"

उसी रात को बाबा सूक्ष्म रूप में मुशरान के घर गये। उनके आगमन से मुशरान का घर पद्म फूलों के गंध से गमकने लगा। मुशरान ने चीखते हुए कहा--"बाबा आ गये हैं पिताजी।"

घर के सभी लोग सूरज प्रकाश के कमरे में आये और पद्म गंध महसूस की। दूसरे ही दिन से सूरज प्रकाश स्वस्थ होने लगा। पाँच-छह दिन बाद बिलकुल ठीक हो गया। अपने बेटे को स्वस्थ होते देख मुशरान के पिताजी एक लिफाफे में पाँच सौ रुपये ले जाकर बाबा को देते हुए बोले--"ये रुपये ज्ञानगंज की कुमारी माताओं के भोजन के लिए है।"

उस समय वहाँ अनेक शिष्य उपस्थित थे। बाबा जिस आराम कुर्सी पर बैठे थे, उसी के हत्थल पर लिफाफा रखने के बाद तीन बार आघात किया। देखते ही देखते लिफाफा अदृश्य हो गया। पांच मिनट के बाद खाली लिफाफा जमीन पर आ गिरा।

बाबा ने कहा--"तुम्हारा लिफाफा लौट आया। इसे घर ले जाओ।"

काशी के एक पंडित को बाबा ने नाभि से कमल उत्पन्न करके दिखाया था। ठीक इसी प्रकार झालदा के एक शिष्य को बाबा ने महाभारतकाल में प्रचलित अग्नि बाण का करिश्मा दिखाया था। बाबा के शिष्य उद्धव नारायण ने पूछा था--"बाबा, महाभारत में अग्निबाण-वायुबाण आदि के प्रयोग होते थे। क्या यह बात सही है?"

बाबा ने कहा—"बिलकुल सही है। अगर देखना चाहते हो तो करके दिखा दूँ।"

अंधे को क्या चाहिए--दो आँखें। उपस्थित लोग इस दृश्य को देखने के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तैयार हो गये। बाबा ने कहा—"ठीक है। सामने सरकण्डे के पौधे हैं। उसमें से तीन टुकड़े काट लाओ।"

तीन टुकड़ों में से एक को धनुष बनाया गया। बाबा ने कुछ मंत्र पढ़े और वह धनुष देखते ही देखते धातु का बन गया। बाद में एक सरकण्डे को लेकर मंत्र पढ़ा तो वह स्टील का तीर बन गया। बाबा ने कहा—"यह सामान्य तीर-कमान है। अब इसका कमाल देखो।"

धनुष पर वाण चढ़ाकर बाबा ने कुछ मंत्र पढ़ा और फिर उसे सामने खड़े बरगद के पेड़ की ओर छोड़ दिया। क्षण मात्र में तीर बरगद के वृक्ष को छेदता हुआ उस पार निकल गया। तुरत वृक्ष में आग लग गयी।

बाबा ने कहा—"इस आग को तुम्हारा फायर ब्रिगेड पूरी शक्ति लगाकर भी बुझा नहीं सकता।"

इसके बाद तीसरा सरकण्डा लेकर उसे भी अभिमंत्रित करके वृक्ष की ओर छोड़ा। देखते ही देखते पेड़ की आग बुझ गयी।

बाद में बाबा ने कुछ और मंत्र पढ़े जिसकी वजह से धनुष और छोड़े हुए दोनों वाण पुनः सरकण्डे के टुकड़े बन गये।

× × ×

ठीक इसी प्रकार की एक घटना वर्धमान में क्षेत्रगोपाल बनर्जी के साथ हुई थी। बनर्जी महोदय फलित ज्योतिष के विद्वान् थे। वे अक्सर रानीगंज स्थित बाबा के निवास स्थान पर आते थे। बाबा का अपना निर्दिष्ट आसन था जिस पर बैठकर आगत शिष्यों और भक्तों को उपदेश देते और बातचीत करते थे। बनर्जी महोदय कुलीन ब्राह्मण थे और अपने को बाबा के समकक्ष मानते थे। फलतः उच्च आसन पर बैठने की आकांक्षा उनके मन में बराबर बनी रहती थी।

एक दिन वे आये और बाबा की बगल में बैठ गये। उस दिन बाबा ने कुछ नहीं कहा, पर दूसरे दिन बाबा के खाली आसन पर बैठने के लिए ज्योंही बढ़े त्योंही बाबा ने अपने एक शिष्य को आदेश दिया कि इनके लिए अलग से एक आसन दे दो।

बाबा के इस व्यवहार से बनर्जी महोदय ने अपने को अपमानित अनुभव किया। उन्होंने प्रतिवाद करते हुए कहा—"बाबा, आप भी ब्राह्मण हैं और मैं भी। आपकी तरह मेरे भी अनेक शिष्य हैं। समाज में प्रतिष्ठा है। इसके अलावा मैं आपसे वय में बड़ा हूँ। आपका यह व्यवहार मेरे लिए अपमान जनक है।"

बाबा ने कहा—"बनर्जी महोदय, सच्चा ब्राह्मण कौन है, क्या इसे आप बता सकते हैं? अगर आप इसे जानते तो यह बात कदापि नहीं कहते। आप कुल परम्परागत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जसना ब्राह्मण हैं, उसी के अहंकार से पूर्ण हैं। वास्तविक ब्राह्मण में ब्रह्म तेज होता है। वह गुणातीत हो जाता है और उसे अन्यान्य गौरव तुच्छ बोध होता है। स्वयं विष्णु भगवान् ने महर्षि भृगु के चरण रज को वक्षस्थल पर धारण किया था।"

बनर्जी बाबू ने कहा--"इस कलियुग में वैसे ब्राह्मण कहाँ हैं जो अपने ब्रह्मतेज से अग्नि प्रस्फुटित कर सके ?"

बाबा ने कहा--"आपका कहना ठीक है। लेकिन आप यह मत भूलिये कि संसार में ऐसे ब्राह्मण नहीं हैं।"

इतना कहने के साथ बाबा ने तिर्छी नजर से बनर्जी बाबू की ओर देखा। बनर्जी बाबू ने जो चादर गले में डाल रखी थी, उसमें आग लग गयी। तुरत उसे उन्होंने फेंक दी। देखते ही देखते वह चादर जलकर भस्म हो गयी। बाबा का यह तेज देखकर वे चकित रह गये। तब बनर्जी बाबू ने अनुभव किया कि बाबा के कथन में कितनी सच्चाई है।

※ × ×

एक दिन बाबा के कतिपय शिष्य बैठे थे। बातचीत के सिलसिले में चर्चा चल पड़ी कि सूर्य विज्ञान के माध्यम से पदार्थों की जो सृष्टि होती है, वह आँखों का भ्रम है, जिसे सादे शब्दों में मायाजाल कहते हैं।

बाबा ने कहा--"सूर्य रश्मियों में कितनी शक्ति है, इसका ज्ञान तुम लोगों को नहीं है। तुम लोगों ने केवल पढ़ना-लिखना सीखा हैं। अभी तुम्हारे सामने मैं प्रयोग करके दिखा सकता हूँ। किसी भी असंभव को अविश्वास की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। पहले उसकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।"

इतना कहकर बाबा ने थोड़ी सी रूई मँगवायी। उस पर लेंस के सहारे सूर्य रश्मि फेंकने लगे। देखते ही देखते रूई जमने लगी। लोगों ने चकित भाव से देखा कि अन्ततः वह रूई लकड़ी के रूप में परिणत हो गयी।

बाबा ने कहा--"यह तो एक पर्व हुआ। इसके बाद दूसरा पर्व दिखाऊँगा।"

सभी लोगों ने रूई से बनी लकड़ी के टुकड़े को देखा। बाद में बाबा ने पुनः लेंस का प्रकाश उस पर फेंकने लगे। इस बार लकड़ी का वह टुकड़ा सख्त पत्थर का टुकड़ा बन गया।"

उपस्थित लोगों में अभय चरण सान्याल महोदय थे जो स्थानीय क्वींस कालेज में अध्यापक थे। उन्होंने कहा--"बाबा, क्या आप यह पत्थर मुझे देने की कृपा करेंगे ? मैं इसे अपनी प्रयोगशाला में ले जाकर जांच करूंगा।"

बाबा ने कहा--"ले जाओ।"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बाबा ने अभय बाबू से कहा—"तुम योगबल या इच्छा-शक्ति का तत्त्व कुछ जानते हो ? जो व्यक्ति इच्छा-शक्ति नहीं जानता, सूर्य विज्ञान नहीं जानता, उसे चाहिए कि किसी भी बात पर अविश्वास न करे।"

ठीक इसी समय एक और शिष्य आ गया। बाबा ने एक फूल को लेकर उसे विभिन्न फूलों के रूप में बदलकर दिखाया। बाद में उसे भी पत्थर बनाकर दिखाया। पुनः उसी फूल की पंखुड़ियों को भिन्न-भिन्न फूलों की पंखुड़ियों के रूप में बनाकर दिखाया। एक ही फूल में एक गुलाब, दूसरा जवा, तीसरा कमल, चौथा चम्पा था। शेष अंश पत्थर था।

× × ×

इसी प्रकार एक संन्यासी महाशय के अभिमान को बाबा ने दूर किया था। उक्त संन्यासी महाशय के पास एक शिवलिंग था। वे साधकों के पास जाकर उनकी शक्ति-परीक्षा लेते थे। जब बाबा के पास आये तब बाबा ने उनके मनोभाव को भाँप लिया।

उनके हाथ से शिवलिंग लेकर बाबा ने उसे हाथ पर उछालते हुए तिर्छी नजर से देखा। तुरत लिंग के कई टुकड़े हो गये। यह देखकर संन्यासी महोदय की आँखों से आँसू निकल पड़े।

बाबा ने पूछा—"क्या बात है ? आप रोने क्यों लगे ?"

संन्यासी ने कहा—"बाबा, यह शिवलिंग मेरा अपना नहीं था। दूसरे का था। अब उसे क्या जवाब दूँगा ?"

बाबा हँसते हुए पुनः उन टुकड़ों को हवा में उछालने लगे। क्षण भर बाद पुनः वह शिवलिंग बन गया। बाबा की इस योग-शक्ति को देखकर संन्यासी महाशय पानी-पानी हो गये।

महायोगी जिस प्रकार अपनी इच्छानुसार सभी चीजों को प्रकट कर सकते हैं, ठीक उसी प्रकार सद्गुरु भी सब कुछ अपने भीतर उत्पन्न कर सकते हैं, अर्थात ईश्वर भाव प्राप्त न होने तक सद्गुरु-भाव प्राप्त नहीं होता। महायोगी सद्गुरु होते हैं। कविराजजी ने अपने गुरुदेव की विभूति प्रदर्शन के सम्बन्ध में एक अपूर्व उदाहरण दिया है।

"शरीर को इच्छानुसार संकुचित और प्रसारित कर पाने पर अणिमा, महिमादि सिद्धि अपने आप आ जाती है। बाबा के शरीर में तीन-चार सौ स्फटिक के गोले हैं। मस्तक के भीतर बाणलिंग, शालिग्राम शिला, स्फटिक की बड़ी माला आदि हैं। आवश्यक होने पर उन्हें बाहर निकालकर पुनः भीतर रख लेते थे। इस दृश्य को मैंने ही नहीं, अनेक लोगों ने देखा है। जप की माला मस्तक के भीतर रखने का नियम है, यह शास्त्रों में लिखा है, पर देखने का अवसर किसी को नहीं मिला है। मैंने बड़े-बड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्फटिक के गोलों को उन्हें अपने रोम कूप के भीतर घुसेड़कर बाहर निकालते देखा है। कभी-कभी संकोच प्रसारण के कारण दो-चार गोले बाहर छिटक जाते थे। छिटककर बाहर गिरनेवाले गोलों में तीव्र पद्म गंध रहती थी। तीव्र रूप से योग क्रिया करने पर शरीर के भीतर ताप भयंकर रूप से बढ़ जाता है, उसे शांत करने के लिए शीत स्पर्श स्फटिकों को शरीर के भीतर धारण करना पड़ता है। जब तक किरात-योगों में सक्षम न हो, तब तक ये गोले धारण नहीं किये जा सकते। इसे मैंने अपनी आँख से देखा और समझा है।"

× × ×

इस प्रकार की अनेक योग विभूतियाँ विशुद्धानन्दजी के शिष्यों ने समय-समय पर प्रकाशित करायी है। आज भी ऐसे अनेक शिष्य हैं जो अपने गुरुदेव के पुण्य संस्मरण को सुनाया करते हैं। अधिकांश मूढ़ तथा भौतिकवादी असम्भव कहकर मजाक उड़ाते हैं। यह ठीक है कि योग विभूति का प्रदर्शन केवल सिद्ध योगी ही करते हैं, साधक या महापुरुष नहीं।

इस सम्बन्ध में विशुद्धानन्दजी ने कहा है—जिसको लोग सामान्यतः योग-विभूति कहते हैं, वह योग में प्रतिष्ठित न होने तक प्रकाशित नहीं होती। लोहा जब गर्म होकर जलाने का सामर्थ्य-लाभ कर ले तभी उस जलाने की शक्ति को लोहे की विभूति कहा जा सकता है। विभूति परमेश्वर की स्वाभाविक-शक्ति का स्वरूप है। आवरण करने के साथ-साथ ही जीव को अपना परिचय ज्ञात हो जाता है। तब वह परमात्मा के साथ युक्त होकर उसकी शक्ति का विकास करता है।

विभूति ऐसे नहीं आती, उसके लिए प्रयास करना पड़ता है। यद्यपि उसकी आकांक्षा नहीं करनी पड़ती। चित्त शुद्धि तथा ज्ञान उन्मेष के साथ वह अपने आप प्रकट होने लगती है। रोग मुक्त होने पर व्यक्ति के शरीर में पुनः शक्ति का संचार होने लगता है, ठीक इसी प्रकार अविद्या दूर होने पर आत्मशक्ति का स्फुरण होने लगता है, यही अविद्या निवृत्ति का लक्षण है।

अनेक लोगों का विश्वास है कि योग कठिन होता है। यहाँ तक कि योग-साधना करते हुए कुछ लोग पागल हो गये हैं, कुछ लोगों की इन्द्रियाँ गड़बड़ हो गयी हैं। इसमें तनिक संदेह नहीं कि योग कठिन अभ्यास है, पर सिद्ध योगी द्वारा निर्देश प्राप्त कर लेने पर वह अति सरल हो जाता है। इससे कोई हानि भी नहीं होती। पुस्तकों में वर्णित या अनाड़ियों द्वारा निर्देशित प्रणाली पर अभ्यास करने पर शारीरिक हानि अवश्य होती है। जो लोग योग के रहस्य तथा मानव-देह की उपादान-शक्ति का ठीक से अनुमान नहीं लगा पाते, उन्हें योग नहीं सिखाना चाहिए। योग्य शिक्षक आधार समझकर सारी क्रियाएँ कराता है जो सरल होता है और उससे कुछ हानि की संभावना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं रहती। यहाँ तक स्मरण रखना होगा योग के बिना आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। अन्य किसी कर्म के द्वारा यौगिक क्रियाएँ उपलब्ध नहीं होती।

योग का स्थान किसी प्रकार का कर्म नहीं ले सकता। योग के अलावा अन्य किसी भी क्रिया से चित्त और देह की शुद्धि नहीं होती।

एक बार योगिराज विशुद्धानन्दजी से कविराजजी ने इस बारे में प्रश्न किया था—"योगियों को अपनी-अपनी शक्ति या योग विभूति प्रकट करना उचित है या नहीं?"

विशुद्धानन्दजी ने कहा—"जो लोग शिक्षार्थी हैं एवं योगराज्य में उन्होंने हाल में ही प्रवेश किया है, उनके लिए योगशक्ति या योगविभूति का प्रदर्शन करना हानिकारक है। इससे आसक्ति या अहंकार में वृद्धि होती है। यहाँ तक कि अति निकटतम व्यक्ति को भी यह बात नहीं कहनी चाहिए ताकि वे लोग योगविभूति की बात जान सकें। जहाँ तक हो सके, योगशक्ति या योगसम्पत्ति गुप्त रखना उचित हैं। जो लोग सिद्धयोगी, अधिकारी की महाकृपा प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिए नियम नहीं है, क्योंकि उनमें अहंकार नहीं होता और न इसकी संभावना रहती है। अपने लिए उस शक्ति की आवश्यकता सभी को नहीं होती। वह इसलिए कि वे महाकरुणा प्राप्त कर सभी पर विजय प्राप्त कर, अब तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं। प्रथम प्रविष्ट तथा जिज्ञासा के लिए प्रदर्शन और अभ्यास आवश्यक होता है। दिखावा करने या इसकी क्रमधारा वस्तु के रहस्य को समझने के अलावा इसके कठिन तत्त्व में प्रवेश करना कठिन कार्य है। प्रथम प्रवेशार्थियों के लिए दृढ़ विश्वास स्थापना के निमित्त कुछ दिखाना आवश्यक होता है। पहले पहल जिसे असम्भव समझा जाता है, वही आगे चलकर दुरूह या असम्भव प्रतीत नहीं होता। सिद्धयोगी के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। शक्ति के अधीन सब कुछ है, इसलिए शक्ति पर अधिकार रहने पर सब कुछ हो सकता है। जो अघट प्रतीत होता है, वह भी घटना के रूप में महाशक्ति के अधीन है। महाशक्ति के द्वारा ही सब चलायमान होते हैं। यो मार्ग में उत्कर्षता प्राप्त करने के लिए शक्ति और सरल विश्वास में किसकी विशेष आवश्यकता होती है? योगमार्ग में दोनों प्रकार के सिद्धान्तों की मीमांसा हुई है। पहली स्थिति में चित्त चंचल रहता है, इसलिए निष्ठा विश्वास कैसे आ सकती है? प्रत्यक्ष-दर्शन एक बार नहीं, बार-बार विभिन्न अवस्था में करने को मनुष्य का मन होता है। ऊपर के स्तर में विश्वास ही प्रधान वस्तु है। प्रथम अवस्था में प्रत्यक्ष ज्ञान का होना आवश्यक है जिससे विश्वास का आविर्भाव हो सके।"

कविराजजी ने पूछा—"योग-मार्ग में विभूतियों में भीतर कौन सा श्रेष्ठ होता है?"

बाबा ने कहा—"इच्छा, ज्ञान और क्रिया यही तीनों श्रेष्ठ हैं। इनमें इच्छाशक्ति सर्वोपरि स्थान प्राप्त कर चुकी है। ज्ञानशक्ति प्राप्त होने के बाद अशेष और विशेष ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् सभी विषयों का ज्ञान हो जाता है—इसमें संदेह नहीं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रियाशक्ति के प्रभाव से सभी प्रकार के कर्तृत्व किये जा सकते हैं। मेरी इच्छाशक्ति के प्रभाव से ही ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति कार्य करती है। इच्छाशक्ति प्राप्त होने के बाद, प्राकृतिक उपादानों को लेकर, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति कर्म कर सकती हैं। यही है–विज्ञान। विज्ञान के अनेक भेद हैं—सूर्य विज्ञान, चन्द्र विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, वायु विज्ञान, समय विज्ञान आदि। पर इच्छाशक्ति विज्ञान नहीं है।"

विभूतियों के बारे में प्रश्न करने पर बाबा ने कहा—"बचपन में मैं विभूतियों की बातों पर विश्वास नहीं करता था। इस बारे में शास्त्रों में वर्णित बातों को काल्पनिक समझता था। किन्तु ज्ञानगंज जाने पर देखा कि वहाँ सब कुछ विचित्र है। लगा जैसे वह मायापुरी है। वहाँ क्या होता है और क्या नहीं होता है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह सब शक्ति का चमत्कार देखकर उसे प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प मन में पैदा हो गया। जब वे शक्तियाँ मुझे मिल गयीं तब उन्हें लोगों को दिखाने का बड़ा भाव था और मैंने दिखाया भी। वह इसलिए कि उन्हें देखकर लोगों में यह विश्वास जगे कि हमारे शास्त्रों में लिखित बातें सत्य हैं। लेकिन अब कुछ भी दिखाने की इच्छा नहीं होती।"

× × ×

विशुद्धानन्दजी एक ओर योगी पुरुष थे तो दूसरी ओर चिकित्सक। साधना करते हुए वे तरह-तरह की सामग्री बनाते थे। इस बारे में कविराजजी ने लिखा है—"मैंने बाबा को कीमती हीरे, नाना प्रकार की मणियाँ, मुक्ता, संदेश, रसगुल्ला, कुनैन टेबलेट, गरी का तेल, गाय का घी, कार्बलिक एसिड, फिनायल, अंगूर, बेदाना, कुंकुम, कर्पूर, ग्राफाइट पत्थर, यूक्लिप्टस तेल, महाशंखवटिका, च्यवनप्राश, मकरध्वज आदि बनाते देखा है। रुई, फूल, पत्तों को पत्थर बना देते थे। सूर्य रश्मि के माध्यम से वे मक्खी, गोजर, चमगादड़ बना देते थे।"

बाबा का कहना था—"अगर एक लोटा दूध गंगा के किसी तट पर गिरा दो तो दूसरे किसी घाट पर विश्लेषण करने पर वह दूध बाहर निकाला जा सकता है। इस दृष्टि से किसी वस्तु की स्वरूप-निवृत्ति नहीं होती। यही वजह है जब जीव ब्रह्मलोक या अन्यत्र कहीं चला जाता है तब क्षमतावान विज्ञानविद उसे आकर्षित कर वापस बुला लेते हैं। सूर्य विज्ञान पर अधिकार हो जाने पर सभी विज्ञान आसानी से समझा जा सकता है।"[1]

× × ×

पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा से भोलानाथजी चिकित्सा का कार्य करने लगे। यहाँ आप आम लोगों में 'डाक्टर बाबू' या 'भोलानाथ बाबू' के नाम से परिचित थे। आप

१. 'सूर्य-विज्ञान' के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए पं॰ गोपीनाथ कविराज तथा श्री नन्दलाल गुप्त की बाबा पर लिखी पुस्तकें पढ़ना आवश्यक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक महान् योगी हैं और आपमें अशेष प्रतिमा है, इसे कोई नहीं जानता था। भोलानाथ जी इस ओर से सतर्क रहते थे और अपने को छिपाकर रखते थे। केवल अंतरंग लोगों को आपके बारे में जानकारी थी।

गुस्करा वर्धमान जिले का एक गाँव है जो वर्धमान-क्यूल लूप लाइन के बीच शांति-निकेतन के पूर्व है। जिन दिनों आप गुस्करा में चिकित्सक के रूप में प्रसिद्ध हो रहे थे, उन्हीं दिनों माँ ने आग्रह किया कि वे विवाह कर लें।

माँ के इस आग्रह को सुनकर भोलानाथजी चिंतित हो उठे। उनकी पहले से ही इच्छा थी कि जीविका के लिए कोई कार्य नहीं करूँगा। आजीवन साधना करूँगा। लेकिन गुरुदेव की आज्ञा से चिकित्सा कार्य करना पड़ रहा है। अब माँ ने यह झंझट उत्पन्न कर दिया।

माँ के बार-बार आग्रह करने पर भोलानाथजी ने इस सम्बन्ध में गुरुदेव से राय लेना उपयुक्त समझा। गुरुदेव भोलानाथ के मातृ-प्रेम से अवगत थे। उन्होंने विवाह करने की अनुमति दे दी।

गुरुदेव सहज ही अनुमति दे देंगे, इस बात पर उन्हें विश्वास नहीं था। अब एक ओर माँ का आग्रह और दूसरी ओर गुरुदेव का आदेश। फलतः उन्होंने इन आदेशों को स्वीकार कर लिया।

यहाँ एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। भोलानाथजी के सतीर्थ हरिपद को भी गुरुदेव ने विवाह करने की आज्ञा दी थी। लेकिन उन्होंने इस आदेश की अव-हेलना की। नतीजा यह हुआ कि इतने दिनों की उनकी साधना, तपस्या नष्ट हो गयी। वे शक्ति-हीन हो गये। अपने को इस स्थिति में पाकर हरिपद बुरी तरह घबरा उठा। अपनी भूल के लिए बार-बार गुरु से क्षमा माँगता रहा, पर उसे ज्ञानगंज से क्षमा नहीं मिली।

वहाँ से उत्तर मिला––"हरिपद, तुम्हारा यह जन्म जरूर निष्फल हो गया, पर अगला जन्म होगा। अब धैर्य पूर्वक शेष जीवन व्यतीत करो।"

जब इस घटना की सूचना भोलानाथ को मिली तब वे सशंकित हो उठे। विवाह के बाद उन्होंने गुरुदेव से पूछा––"गुरुदेव, आपके आज्ञानुसार गृहस्थ-जीवन अपनाने जा रहा हूँ। कृपया मुझे यह बताइये कि इससे मेरी साधना या तपस्या में कोई विघ्न तो नहीं होगा?"

गुरुदेव ने कहा––"नहीं। तुम्हारी तपस्या में कभी कोई विघ्न नहीं आयेगा, बल्कि तुम उत्तरोत्तर उन्नति करोगे।"

विवाह के बाद भोलानाथ ने अपने नाम में 'तीर्थ' उपाधि ग्रहण की!

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अब उनका दैनिक कार्यक्रम नियम से चलने लगा। प्रातःकाल उठकर सबसे पहले क्रिया करते, बाद में टहलने निकल जाते। दस बजे भोजन के पश्चात् आगंतुकों से वार्तालाप धर्म-चर्चा करते। कभी-कभी मरीज देखने बाहर चले जाते थे। सूर्यास्त के बाद कहीं नहीं जाते थे। उस समय एक कमरे में जाकर भीतर से दरवाजा बन्द कर साधना में लीन हो जाते थे। रात भर पूजा-गृह में समाधिस्थ रहते थे। जिस वक्त उस कमरे से निकलते थे, उनके शरीर से पद्म पुष्पों की तीव्र गंध निकलती थी।

उस समय कोई उन्हें हवा करता, तो कोई पैर दबाता था। बाहर बरामदे में रोगी, साधु, बालक और वृद्धों की भीड़ प्रतीक्षा में बैठी रहती। वहाँ आते ही प्रत्येक से पूछते—"कहो, कैसे हो?"

सभी अपनी बात कहते। बच्चे परसादी के लिए शोर मचाते। एक प्रकार से उस समय अजीब दृश्य उपस्थित हो जाता था।

विशुद्धानन्दजी को जब 'तीर्थ स्वामी' की उपाधि प्राप्त हुई तब वे कठोर-साधना करने लगे। इनकी साधना से संतुष्ट होकर 'ज्ञानगंज' से इन्हें 'परमहंस' की उपाधि दी गयी। यद्यपि इसके लिए इम्तहान हुआ था। परीक्षक थे—स्वामी नीमानन्द परमहंस।

जब साधक परमात्मा की उपलब्धि कर लेता है तब उसमें हंस से ऊपर परमहंस भाव का उन्मेष होता है। इस अवस्था तक पहुँचने पर सांसारिक द्वन्द्व नहीं रहता। निर्द्वन्द्व पद की प्राप्ति होती है। परमहंस पद प्राप्त करते ही सारा अभिमान दूर हो जाता है। केवल एक बोध मात्र रहता है।

काशी में 'विशुद्धानन्द कानन' साधकों के लिए तीर्थ स्थान है। यहाँ नवमुण्डी आसन है। ऊँचे दर्जे के साधक ही इस आसन पर बैठकर साधना कर सकते हैं। साधारण व्यक्ति अगर भूल से उधर चला जाता है तो उसे झटका खाना पड़ता है। नवमुण्डी सिद्धासन पर केवल ज्ञानगंज के ब्रह्मचारी, भैरवी और सिद्ध साधक आकर पूजा करते हैं। सामान्य साधक वहाँ बैठकर पूजा करने का साहस नहीं कर पाता। बाबा वहाँ क्रियाशील लोगों को लेकर बैठते थे। इस आसन के नीचे मनुष्य, वनमानुष, हाथी, शेर, बाघ, सियार, सजारू, बिल्ली और सर्प के मस्तक गड़े हुए हैं।

बाबा में एक खूबी यह थी कि वे स्वरचित गीत अक्सर रात को गाते थे। इसका उल्लेख उनके भक्त मुनीन्द्र मोहन कविराज तथा उपेन्द्र चौधरी ने किया है।

२७ आषाढ़, रविवार, सन् १९३७ के दिन इस महान् योगी ने कलकत्ता के भवानीपुर मुहल्ले में समाधि ले ली। आपके शरीरांत के बाद भी अनेक भक्त आज तक आपका कृपा-प्रसाद प्राप्त करते आ रहे हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

). In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.